सिगरेट के टुकड़े

रजनी पनिकर

शारदा मन्दिर
नई सड़क
देहली

विषय सूची

नई पीढ़ी

३

नई पीढ़ी

'ऐश्वर्य में भी एक सुख है, एक आराम है'...मेरी इस बात का लगभग वे सभी समर्थन करेंगे जिन की आयु ४५ के आस-पास है। ठिठुरी सिकुड़ी सुबह, गरम-नरम रजाई में यदि नौकर मुझे एक खौलती हुई चाय की प्याली दे दे तो अपार सुख मिलता है।

मेरे पति खुरजा में औसत दर्जे के दूकानदार हैं। पहनने-ओढ़ने भर को मुझे पर्याप्त मिल जाता है। मुझे सौन्दर्य के प्रति अनुराग है। बाग-बगीचों में फुहारे चलते हैं, मैं उल्लसित हो उठती हूं। मैं सोचती हूं मेरे उल्लास तथा बरसात में लदे झुके आम के नीचे नाचते हुए मोर के उल्लास में समानता है।

ज़माना बदल गया है। आज परिवर्तन गतिमान है। नई पीढ़ी...मेरा मतलब आजकल के लड़के-लड़कियों से है। इन की हर बात मुझे या मुझ से पांच-दस वर्ष बड़ों के लिये कौतूहल पूर्ण होती है।

जो भी हो आप कहानी सुनिये जैसा मैंने कहा है कि ऐश्वर्य मुझे आज भी भाता है। राजा महाराजाओं की फिजूल-खर्चियों के किस्से मुझे याद हैं। भारत के गिने-चुने सेठों के ऐश्वर्य के बारे में भी मैंने सुन रक्खा है। मेरे भाई किशोरी लाल जी की विभाजन से पहले पुस्तकों की दूकान थी। पुस्तकें लिखने का चस्का भी उन्हें लग गया था। अच्छी आय हो जाती थी। विभाजन के बाद भैया ने दिल्ली में एक पुस्तकों की दूकान पर नौकरी कर ली, एक के बाद दूसरे के यहां, कहीं भी जम नहीं सके। भैया के दो लड़के एक लड़की और एक पत्नी है। बड़ा लड़का विभाजन से पहले विलायत चला गया था, तो फिर लौटा नहीं। उसने वहीं विवाह कर लिया। छोटे लड़के को वह किसी न किसी तरह मसूरी के एक अंग्रेज़ी कान्वेन्ट में पढ़ाते थे।

लगभग तीन वर्ष की बात है वह छोटे लड़के से मिलने गये। जिस होटल में ठहरे, वह एक बूढ़ी अंग्रेज़ महिला का था, उसे एक ऐसे मैनेजर की आवश्यकता थी, जो होटल के फर्नीचर का पालिश कायम रख सके, शीशे चमकते रख सके, भोजन की सूची में भारतीय पकवानों के साथ-साथ दो चार अंग्रेज़ी पकवानों की भर्ती भी कर सके। लाहौर में भैया की अंग्रेज़ी पुस्तकों की दूकान थी और वह भी माल रोड पर। भैया को अंग्रेज़ी पकवानों के नाम भी याद थे। होटल की बुढ़िया मालकिन ने भैया को साढ़े तीन सौ वेतन तथा पांच प्रतिशत मुनाफे पर मैनेजर के पद पर रख लिया।

इधर तीन वर्ष भैया ने होटल अच्छा चलाया और एकाएक

जब बूढ़ी मालकिन ने अपने देश जाने का निश्चय किया तो भैया होटल खरीदने में सफल हुए।

पिछले छः मास से उनके पत्र आ रहे थे, भाभी भी बुला रही थीं कि एक बार मसूरी आओ यहां जो होटल लिया है वह बहुत बड़ा है, उसमें बड़े अच्छे कालीन बिछे हैं...हर कमरे में गद्देदार पलंग की पीठिका के पीछे बिजली भी लगी है। होटल के कमरे ऐसे सजे हैं, वैसे सजे हैं। रोज शाम को यहां नृत्य होता है। भाभी ने लिखा, मधु तुम आओ और जमाई बाबू को भी साथ लाओ, एक बार आकर यहां की बहार तो देखो, अब हमारी हैसीयत भी है कि तुम्हें बुला सकें।

एकाएक भाभी का पत्र आया कि मनोरमा की छुट्टियां हो रही हैं, उसके साथ मसूरी चली आओ। इधर मनोरमा से मैं दो तीन वर्ष से मिली भी न थी। मैंने मसूरी जाने का तय कर लिया और दिल्ली पहुंच सीधी मनोरमा के कालेज होस्टल में पहुंची। मनोरमा को वहां देखा, तो देखती रह गई। पिछले दो तीन वर्ष पहले की मनोरमा अब युवती हो चुकी थी। उसके परिधान ने मुझे चौंका दिया। केवल एक सफेद खादी धोती, पांव में चप्पल और रूखे केशों का जूड़ा। कोई आभूषण नहीं, मुस्कान में व्यंग्य, और आंखों में चमक। मुझे लगा कि उस चमक के पीछे 'खोज' छिपी है।

मनोरमा से उस दिन मेरी संक्षिप्त बातचीत हुई। दूसरे दिन शाम को हम मसूरी जा रहे थे। भैया बड़े आदमी हैं, यही सोचकर मैंने मनोरमा के लिये और अपने लिये फ़र्स्ट क्लास में

सीट रिजर्व करवा ली थी। स्टेशन पहुंच कर उसने फर्स्ट क्लास के डिब्बे में बैठने से इन्कार कर दिया।

कारण पूछा तो जैसे उसका चेहरा क्रोध से आरक्त हो गया, "बुआ कारण पूछने की क्या आवश्यकता समझी।"

देहरादून पहुंच कर मैंने उसे एक अच्छे से रेस्तराँ में चाय पिलानी चाही परन्तु वह स्वयं ही चाय की दूकान देख मुस्करा कर बोली, "बुआ मेरे लिये तो यह चाय की दूकान ही ठीक है।"

मैं हतप्रभ थी।

जब हम मसूरी पहुंचे तो तेज वर्षा हो रही थी। भैया और भाभी तब भी हमें मोटर के अड्डे पर लेने आये हुए थे।

मनोरमा ने मां को देखा तो गले मिलने के लिये आगे बढ़ी फिर एकाएक पीछे हट गई जैसे अज्ञात 'करेंट' ने उसे धक्का दे दिया हो। मैं और भाभी एक दूसरे का मुँह देखने लगे। भैया ने सुझाया, वर्षा हो रही हैं चलो, रिक्शा में चलते हैं। मनो-रमा ने इन्कार कर दिया, हम सब को वर्षा में भीगते हुए जाना पड़ा।

अकेले में राधा भाभी ने मुझे बताया कि मसूरी आकर उन्होंने बाल बाब करवा लिये हैं, पहले वह जूड़ा बांधती थीं। मसूरी के इतने बड़े होटल के मालिक की पत्नी होकर उनके लिए बाल कटवाना आवश्यक हो गया था। लिपस्टिक का प्रयोग तो वह पहले भी करती थीं, अब सब सलीकेदार हो गया था।

मनोरमा ने मां के कमरे में शृंगार-मेज़ देखी तो बोली...
"मां यह सब तुम्हारे लिए है ?"

राधा भाभी के हां कहने पर नाक भौं सिकोड़ कर बोली–
"मां तुम्हें...इस आयु में...यह सब ?"

मैंने भाभी का साथ देना उचित समझा, हंसकर कहा,
"भाभी अभी तो आप बयालीस की हैं। परन्तु तीस से अधिक नहीं लगतीं।"

भाभी इस बात पर सिन्दूरी हो उठीं। मां को अरुणिम होते देख मनोरमा चली गई।

मुझे मनोरमा के आचरण में बहुत दिलचस्पी थी। मैं एक छोटी सी बच्ची को घर छोड़ कर आई थी। मेरी सास की देख-रेख में वह बच्ची बड़ी हो रही थी। यदि वह भी ऐसी निकले ? मनोरमा केवल एक बात जानती है, ऐश आराम से विद्रोह।

मुझे विचार मग्न देखकर भाभी बोलीं–"यह आज तुम्हारी ही तरह तीन वर्ष बाद घर आई है।"

कारण पूछने पर भाभी उत्तर देने वाली थीं कि किशोरी लाल भैया मुझे और भाभी को होटल की बाईं ओर वाली 'बालकनी' में चाय पीता देख कर आ गये थे।

भैया कहने लगे—

"तीन वर्ष के बाद मसूरी आई है। एक बार छुट्टियों में वह छात्रों के साथ चीन चली गई थी और एक बार दक्षिण भारत देखने की धुन सवार हुई थी। एक बार स्वयंसेवकों के दल में शामिल हो कर दिल्ली के पास ही छात्रों ने एक आदर्श नगर की

स्थापना की थी, मनोरमा उसकी सदस्या भी थी। गांव में खुदाई का काम भी करती रही, सड़क बनाई, अस्पताल बनाया और स्कूल की स्थापना की। आज चौथी बार छुट्टियां हुई हैं तो मसूरी आई है।"

मसूरी! रमणीय पहाड़ी स्थल, भाभी भैया दोनों ही मुझ पर कृपा रखते। मेरा मन वहां रम गया। भैया के साथ घूम-फिर कर मैंने मसूरी देख डाली। मनोरमा भी एक दो बार हमारे साथ गई थी। सैर करते समय भी वह न जाने किस गहरे विचार में डूबी रहती। उसे खुल कर हंसते देखना तो जैसे असम्भव था। मुझे अपना समय याद आता था, मैं बात बात पर हंस देती थी। घर के भीतर-बाहर आते जाते मुझे यह सुनना पड़ता कि जाने कब इसकी बत्तीसी बन्द होगी। यह हंसती ही जायेगी।

भैया ने होटल में "बार" भी खोल रक्खा था, जहां हर रात "डान्स" होता। लोग शराब पीते। शराब चोरी-चोरी बेची भी जाती। मनोरमा ने एक दिन वहां शराब बिकती देख ली। उस रात उसने भोजन नहीं किया, वह भूखी ही रही। भैया ने मनाने का प्रयत्न किया तो कुपित हो कर बोली, "मुझे आपसे ऐसी आशा नहीं थी पिता जी। आप किसी लड़की के पिता होने के योग्य..। चोरी-चोरी शराब बेचते हैं, रुपया कमाते हैं और मां के बाल बाब करवा के इस शराब खाने में घूमने-फिरने देते हैं।"

भैया को जैसे किसी ने मुख पर तमाचा मार दिया हो। वह ठिठके फिर गरज कर बोले:—"कैसी बात करती है? क्या

तेरी शिक्षा का मुझे यही लाभ होना था। मुझे पता होता तो मैं तुझे...।"

अब भी मनोरमा को लज्जा नहीं आई, उसकी आँखें नहीं झुकीं। वह बोली—"आप मुझे दासता के उस विदेशी रंग में ही रंगना चाहते हैं जिस में आपकी पीढ़ी की पीढ़ी रंगी चली आ रही है, जो पीढ़ी होटल में बैठकर शराब पीने में, रात को देर तक जागने में, और देर रात गए तक ताश खेलने में अभी भी अपना गौरव समझती है।"

मैंने उस समय नयी पीढ़ी की इस नन्हीं सी सदस्या को देखा। जैसे गति साकार हो उठी थी। वह आवेश में नहीं थी, उसका मुख शान्त था। भाभी चुप खड़ी थी जैसे उन्हें सांप सूंघ गया हो। मनोरमा ने आंखें अपनी मां पर गड़ा दीं और एक क्षण बाद तेजी से बाहर चली गयी। रात भर वह लौटी नहीं, सड़कों पर घूमती रही। राधा भाभी ने अपना सिर पीट लिया।

"मधु, देखा तुमने, मेरा तो भाग्य फूट गया है। यह कैसी अजीब लड़की है। दूसरों की भी लड़कियां हैं, गहने और कपड़े को तरसती हैं। इन मेम साहिब को मामूली सूती साड़ी चाहिये, जेवरों से जैसे जन्म का बैर है। इसकी आयु की सब लड़कियां, अच्छा खाती हैं, ढंग से सभा सोसायटी में आती जाती हैं। इस जैसा पागल तो मैंने कोई देखा नहीं। भाई का कान्वैन्ट से नाम कटवा कर किसी हिन्दी स्कूल में भर्ती करवा दिया है। मुझे तो उसका भविष्य भी अंधियारा ही दीखता है।"

"क्या सुरेश अब कान्वैन्ट में नहीं पढ़ता ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"जब से तुम्हारी लाडली आई है उसका कान्वैन्ट में पढ़ना बन्द कर दिया गया है। वह फिजूल खर्ची समझी जाती है। मेरे बेटे की पढ़ाई मुझ से छिपाई जा रही है।"

राधा भाभी उदास हो गईं। भैया भी मनोरमा से तंग आ गये। उन्हें लगा, उन्हें अपने विचार बदलने पड़ेंगे। यह जो उनकी धारणा थी कि लड़की बड़ी मेधाविनी है, उन्हें बिल्कुल त्याग देना होगा। मनोरमा अपने कमरे में गद्देदार पलंग पर भी न सोती थी। हम लोगों के साथ होटल में खाना तो खाती पर स्वयं पकाती। राधा भाभी होटल के बावर्ची से भी अपना तथा अपने पति की रुचि का खाना बनवाने से न चूकती थी। वह कुढ़ती रहतीं कि लड़की कुछ भी नहीं खाती। सुरेश अपनी जीजी का भक्त था वह वैसा ही आचरण करता।

किशोरीलाल जी एक शाम को अपने आफिस के ड्राइंग रूम में बड़े ज़ोर-ज़ोर से बहस कर रहे थे। मनोरमा के बोलने की आवाज़ भी आ रही थी। उसकी आवाज़ भी ऊँची थी।

"तुम आज शाम को पार्टी में चलोगी और पहले अपने पहनने के लिये एक गरम कोट पसन्द कर लो।"

"मैं पार्टी में नहीं जाऊंगी। भर पेट खाना यहां मिल जाता है। वहाँ आज रात कोई सौ रुपये का खाना फेंका जायेगा। वही अन्न हम उन गरीब पहाड़ियों को क्यों न बांट दें, उन

पकवानों को भरे पेट पर खाने की आपको क्या आवश्यकता है पिता जी ? वह होटल के सामने वाले कुलियों को दे दीजिये, जो शायद सुबह से भूखे हैं ।"

"मनोरमा तुम्हें जाने क्या हो गया है । तुम तीन वर्ष घर से बाहर क्या रही हो...तुम्हारा आचरण ही लड़कियों का सा नहीं रह गया । तुम अपने पिता को ऐसी बात कह रही हो ?"

राधा की आँखों में आँसू आ गये । मैं नई पीढ़ी की भावनाओं का आदर करने वालों में से थी परन्तु यह बात तो मुझे भी चुभ गई । पिता को कोई ऐसे भी कहता है । यह कालेज का मंच तो नहीं । यह घर था ।

इस घटना के बाद भैया ने मनोरमा में दिलचस्पी लेना छोड़ दिया । वह जो चाहे करे, जहाँ चाहे जाये । दिन-दिन भर मनोरमा पहाड़ों के चक्कर काटती रहती । कभी-कभी दोपहर को किशोरीलाल जी और राधा सो रहे होते तो उस समय मैं जरूर मनोरमा से बातें करती । इधर कुछ दिनों से रेवती नाम का एक लड़का भी उसके साथ रहता । यह अधिक पढ़ा लिखा नहीं था, शायद मैट्रिक के बाद प्रभाकर पास किया था । वह मसूरी के पास ही एक गांव में मास्टरी करता और शाम को या छुट्टी के दिन पैदल आकर मनोरमा से मिल जाता । मनोरमा में और उसमें घंटों बातें होतीं और दोनों विदेशी क्रान्तियों की चर्चा करते । कभी-कभी मनोरमा रात को भी बाहर रहने लगी थी ।

राधा भाभी जैसे इस ओर से बिलकुल चिन्तित नहीं थीं, उनको अपने बालों में क्लिप लगाने, क्लब में उठने बैठने से ही

फ़ुरसत नहीं थी कि लड़की को देखतीं ।

मैंने उचित समझा कि मैं उनका ध्यान इस ओर आकर्षित करूं ।

राधा भाभी ने धीरे से मुस्कराते हुए कहा—"शायद मनोरमा अब विवाह कर रही है ।"

"हो सकता है ।"

"मुझे केवल एक चिन्ता है कि यह विवाह किसी ऐसे व्यक्ति से करेगी जिस के पास इस को खाने पहनाने के लिये रुपया पैसा नहीं होगा । जो इससे बर्तन मंजवायेगा । यहाँ तक कि यह बीमार हो जायेगी । इस लड़की का दिमाग़ ख़राब है ।"

अब मनोरमा को मुझ से बातचीत करने का भी कम समय मिलता था । वह अधिकतर रेवती शरण में ही व्यस्त रहती थी ।

मुझे मसूरी आये, लगभग दो मास हो गये थे । मैं जी भर कर घूमी थी और मैंने जी भर अच्छा भोजन खाया था । राधा भाभी और किशोरी लाल जी भैया के आतिथ्य से मैं तृप्त थी ।

मनोरमा और सुरेश का आचरण ही अब उनके क्षोभ का कारण था । वैसे भगवान की अपार कृपा थी । धरती पर इतना आराम भी किसी को मिल सकता है, इसकी संभावना मैं तभी कर पाई जब मैंने भी उस आराम को भोगा । जैसा मैं पहले कह चुकी हूं, मुझे इस आराम से चिढ़ नहीं है । मुझे

इससे सुख मिलता है। मैं स्वयं बड़ी ही साधारण स्थिति के आदमी की पत्नी हूं।

मैं जब मसूरी से चली तो मनोरमा का पता नहीं था, वह घर पर नहीं थी। राधा भाभी से उसके विषय में कुछ कहने की हिम्मत नहीं हुई। मैं खुरजा लौट आई। खुरजा आने के लगभग तीन चार दिन बाद मुझे मनोरमा का पत्र मिला।

पूजनीय बुआ जी,

आपके जाने से पहले मैं आप से न मिल सकी। क्योंकि मैं उस स्थिति में माता जी—ममी कहलवाना अधिक पसन्द करती हैं—के सामने नहीं आ सकती थी। उनको मेरे आचरण से बहुत दुःख होता। मैंने रेवती से विवाह कर लिया है और मैं यहाँ समाज सेवा का कार्य कर रही हूं, साहित्य में एम० ए० करके क्या होगा ? यहां बीमारी है, अज्ञान है, दारिद्रय है और शोषण है। पिता जी के होटल के लिये घी यहाँ से जाता है दो रुपये सेर, वह मसूरी में साढ़े तीन रुपये सेर बेच देते हैं और होटल की रसोई में बनस्पति घी से खाना बनता है। मैं चाहती हूं, इन लोगों को भी परोपकारी संस्थाओं से कुछ लाभ करवा सकूं। दवाइयों की आवश्यकता यहाँ है जहाँ लगभग ७५ प्रतिशत लोग बिना उपचार के मर जाते हैं। गान्धी जी के सिद्धान्त क्या हैं, विनोबा जी के कार्य और विचार इन लोगों को बताना है। केवल शहरों में रह कर होटल चलाने से और धड़ाधड़ रुपया कमाने से हमारा काम नहीं चलेगा। न ही रुपया कमा कर समाज सेवा पर बड़े बड़े भाषण देने से कुछ बनेगा। श्रमदान आन्दोलन से यदि मैं इन

लोगों का कुछ कर सकूं तो इस से बढ़ कर मेरे लिये गौरव की कोई बात न होगी।

मां और पिता की पीढ़ी में निजी सुख ही सब कुछ है। बुआ जी, हमारी पीढ़ी तो कुछ नया सोचेगी। उस से तो आप वह पुरानी आशा नहीं रखतीं। उम्मीद है कि कम से कम आप मुझे अभिशाप नहीं मानेंगी। अपने कार्य में यदि सफल हुई तो मैं आपको आमन्त्रित करूंगी। आप आशीर्वाद देने आइयेगा।

आपकी आज्ञाकारिणी

मनोरमा

ओह! राधा भाभी और किशोरीलाल भैया पर इस विवाह का क्या प्रभाव पड़ा होगा। किशोरीलाल की आयु पैंतालीस वर्ष की है और मनोरमा की बीस वर्ष की, यह पच्चीस वर्ष का अन्तर! हमारे लिए नई पीढ़ी ऐसी है तो जब मनोरमा के सन्तान होगी, बिल्कुल नई पौदें, उसका भविष्य कैसा होगा? उसकी मान्यतायें क्या होंगीं?

यह पत्र

०००००००००

तुम्हारा पत्र आज तीन दिन बाद मिला। तुम ने लिखा है मैं तुम्हारे लिए पत्र के ऊपर सम्बोधन नहीं लिखती। तो क्या ? पत्र तो लिखती हूं। रोज शाम को घर आकर मेरा यही काम है कि तुम्हें पत्र लिखूं। वह पत्र तुम्हें दूसरे दिन दोपहर को मिल जाता है। मेरी हर सांस डाक के इस सुप्रबंध को लाख लाख धन्यवाद देती है।

हां, तो तुम्हारा पत्र इस बार भी नीरस है, न जाने क्यों तुम ऐसे रूखे रूखे पत्र लिखते हो। तुम्हारे पत्र मुझे उन बेजान रूखे नीम के पत्तों की याद दिला देते हैं जो हम गरम कपड़ों की तह में से सर्दियां आने पर निकालते हैं। तुम्हारे पत्र से ऐसे पता चलता है जैसे मैं तुम्हारी पत्नी नहीं केवल "सहकारिणी" मात्र हूं।

आजकल बरसात है, वर्षों पुराने ठूंठ में नए कोंपल फूटते हैं। मेघ मालाओं का गर्जन सुन यदि मेरे हृदय की धड़कनें

बढ़ जायें तो उन्हें मैं कैसे दोष दूं ? प्रकृति का हरा शृङ्गार यदि मेरे अन्तर में टीस भर दे और आंखों के आँसू आँखों में ही तुम्हारी आकृति को धो डालें तो मैं क्या करूं ? मेरे पास केवल एक ही साधन रह जाता है कि मैं तुम्हारे पत्र पढ़ने लगूं । मुझे सिगरेट पीने की आदत नहीं है कि उसी के धुएं में अपने हृदय के हाहाकार को छिपा लूं । और शायद तुम यह सहन भी न कर सको कि पत्नी सिगरेट पिये ।

तुम ढङ्ग के पत्र तो लिख सकते हो, मैं तुम्हें कवि कालिदास का चारण तो नहीं बनाना चाहती जो...अपनी प्रिया को बादल के हाथ सन्देश भेजता है, लेकिन फिर भी इतना तो चाहती हूं कि तुम कुछ ऐसा लिखो जिस से जमा हुआ खून नसों में बहने लगे । जानते हो अनुभूति जब सजग होती है तो उस के साथ पीड़ा और कसक होती है, तो कराह अपने आप निकल जाती है । शायद तुम इस कराह से परिचित नहीं, तभी तो व्यक्त नहीं कर पाते ।

नारी भी क्या है, कृष्ण, मैं सोचती हूं नारी की आस्था ने ही पुरुष को मनुष्य रूप में भी भगवान् का सम्बोधन दिया है । पुरुष को और कोई देवता कह कर पुकारता है ? मानते हो नहीं । केवल नारी । मैं भी नारी हूं कृष्ण, और साथ में तुम्हारी पत्नी, मैं तुम्हें नित्य नये सम्बोधन देती हूं, तुम्हारी तरह रोज रोज वही घिसा पिटा, 'प्रिय विमला' ही नहीं ।

तुम्हें याद होगा कि आज से तीन बरसातें पहले हमारा विवाह हुआ था । विवाह से पहले केवल एक वाक्य तुमने ऐसा कहा था जो मुझे भुलाए नहीं भूलता, आज भी याद है । तुम

ने कहा था ..विमला तुम्हारी इन सुकुमार, सुरमगीं आँखों में स्वयं को बसा देखता हूं तो लगता है कि मरणासन्न रोगी को समय पर पथ्य और दवा मिल रही है। आशा होती है जी जायेगा। तुम्हारे इसी एक वाक्य ने मेरा भविष्य निश्चित कर दिया था। तुम्हारी माता जी के विरोध करने पर भी हम एक सूत्र में बंध गये थे। अभी केवल तीन ही वर्ष तो हुए हैं।

पहले दो वर्ष तो बहुत अच्छी तरह कटे थे, हंसी खुशी की लहर, मुस्कराहटों का मेला, लगता था, जैसे स्वर्ग के सारे सुख सिमट कर हमारी सांसों में आ गये थे। उतनी खुशी में भी तुम्हारे ओंठ सटे रहते, तुम खामोश मेरी ओर देखते रहते। तुम्हारी वह खामोशी मुझ से सब कुछ कह देती। सम्पृक्त क्षणों की उस मधुर स्मृति को स्मरण कर अब भी मैं अपने को झुठला लेती हूं।

तुम लिखते हो, तुम्हारे अफसर तुम से बड़े प्रसन्न हैं, तुम काम बहुत अच्छा करते हो। यह पढ़कर मुझे प्रसन्नता हुई, इसमें सन्देह नहीं। जब तुम्हारे पत्र के चार पृष्ठ केवल इन्हीं बातों से भरे रहते हैं कि तुम क्लब में गये तो तुम्हें कौन मिला दफ्तर में क्या क्या बात हुई। दोस्तों के साथ तुम पिकनिक पर चले गए, अमुक जगह तुम 'मैंगो पार्टी' में सम्मिलित होने गये, तो जानते हो मुझे क्या लगता है? मैं अभाव से भर उठती हूं। मेरा अभाव एक बहुत बड़ा रूप लेकर मुझ पर वैसे ही घर कर जाता है जैसे एक दिन पुरानी दुल्हिन पर लज्जा का आवरण। वह लज्जा उसके लिये मीठी होती है पुलक भरी होती है परन्तु यह अभाव मेरे लिये घनीभूत अतृप्ति छोड़

जाता है। उसका आभास भी तुम्हें हो पाये तो मैं अपने को सौभाग्यशाली मानूंगी। तुम कहोगे यह मैं क्या बेसिर पैर की बातें कर रही हूं, पर यह सच है कृष्ण, तुम अपने में ही इतने पूर्ण हो तुम नहीं समझ सकोगे। यह उल्हाना नहीं है यह मेरे हृदय की सच्ची वेदना है।

तुमने पढ़ाई के लिए कर्ज लिया ठीक है, तुम शिक्षित न होते तो इतने बड़े आफिसर कैसे बनते और फिर हमारी मुलाकात कैसे होती। यह शिक्षा तुम्हें तो मंहगी पड़ी ही, परन्तु उसका मूल्य जो मुझे चुकाना पड़ रहा है, वह बहुत अधिक है। मैंने कभी यह नहीं सोचा था कि तुम से दूर रहकर मेरी हालत ऐसी होगी। अब तो एक वर्ष होने को आया, तुम कहोगे अभी कुछ मास पूर्व तुम छुट्टी लेकर यहां आये थे, वह केवल एक सप्ताह ही तो था। तुम्हें अपने दोस्तों से मिलने मिलाने से ही फुर्सत नहीं मिली। साल भर में एक सप्ताह क्या होता है ? सच तुम...तुम जब मिलते हो, तब भी तुम्हें कुछ नहीं कहना होता। तुम बहुत होगा तो यही लिखोगे कि मैं छुट्टी लेकर तुम्हारे पास चली आऊँ, परन्तु उसमें भी रुपया खर्च होता है और मैं किसी भी प्रकार की फिजूलखर्ची नहीं करना चाहती, जल्द से जल्द तुम्हारा कर्जा निपटा देना चाहती हूं। तुम अपने पत्रों को इतना रूखा न लिख कर ज़रा कोमल बना सकते हो। मैं यहाँ अकेली हूं। सखियां भी हैं एक दो। उन्हें देखती हूं तो तुम्हारी याद और भी खलने लगती है। प्रमा दिन भर काम करते करते बीच में अपने बच्चे की बात

सुन ती रहती है। शाम को घड़ी की सुई अभी पांच पर नहीं पहुंचती कि उस के पति उसे घर ले जाने के लिए आ जाते हैं। है तो बुरी बात, परन्तु उन दोनों को इस तरह इकट्ठा जाते देख मैं ईर्ष्या से भर उठती हूं। काश हम इस तरह इकट्ठे होते। पर ऐसा भाग लेकर मैं पैदा नहीं हुई हूं। जितना समय मैं दफ्तर में काम करती रहती हूं, वह तो ठीक व्यतीत होता है परन्तु जब काम नहीं रहता...जब मैं घर आ जाती हूं तो चारदीवारी के सिवाय और कुछ नहीं रह जाता। तब उस समय अपने को स्मृतियों में भुला रखना भी कठिन हो जाता है, तो मैं तुम्हारे पत्र खोल कर पढ़ती हूं। रात को नींद नहीं आती, तो भी तुम्हारे पत्र ही मेरा सहारा होते हैं, तुम इन पत्रों को इतने निर्मोही ढंग से लिखते हो जैसे तुम्हें मुझ से कोई मतलब नहीं। कोई लगाव नहीं। कृष्ण! ऐसा मत समझना कि मैं तुम्हारे हृदय के भावों से परिचित नहीं। परन्तु मैं नारी हूं और नारी कुछ बातों में अभिव्यक्ति चाहती है। मौन स्नेह वहीं तक अच्छा लगता है जब देने वाला और लेने वाला पात्र एक-दूसरे के पास हों। एक स्नेह सिक्त पत्र जिस से मुझे यह आभास मिले कि तुम भी मुझे याद करते हो मुझे कितनी सान्त्वना दे सकता है। जाने इतना पढ़ लिख जाने के बाद भी तुम्हें पत्नी को प्रेम-पत्र लिखना क्यों नहीं आया। मेरा हृदय तुम्हारे एक पत्र के लिये तड़प उठता है। सुनो, एक बात सूझी, बुरा न मानो तो मैं तुम्हें उदाहरण के लिए एक पत्र लिख कर भेजती हूं, उसी तरह का स्नेहभरा पत्र तुम मुझे भी लिखना। देखो, तुम्हें मेरी

३७४७

कसम जो तुम इस सुझाव पर हँसे तो। यह मेरी गहन भावनाओं का उपहास होगा, मेरे प्रेम का निरादर होगा। तुम ऐसा ही पत्र लिखने में अपने को असमर्थ पाओ तो तुम यह ही पत्र अपने हाथ से कागज पर उतार कर मुझे पोस्ट कर दो, तुम नहीं समझ सकते यह पत्र मुझे कितना सुख कितनी शान्ति देगा।

विमला,

तुम्हारे दो पत्र आज मिले परन्तु उस से मेरी तसल्ली नहीं हुई विमला। इसमें सन्देह नहीं कि तुम स्नेहपूर्ण पत्र लिखती हो, फिर भी मुझे यह जीवन अधूरा लगता है। सवेरे सो कर उठता हूं तो तुम दिखाई देती हो, चाय पीता हूं, तो कड़वी लगती है क्योंकि तुम्हारे हाथ की बनी चाय में और ही स्वाद है।

विमला सच मानो तुम्हारे बिना यह जीवन बिल्कुल सूना लगता है। मैं दफ्तर जाता हूं, मन लगाकर काम करता हूं, परन्तु काम करने में कभी-कभी तुम्हारी याद आकर जैसे लेखनी की नोक पर बैठ जाती है। वह याद के भार में एक अक्षर भी और नहीं लिखती तो मैं तुम्हारे पास पहुंच जाता हूं, तुम्हें अपने स्वागत में मुस्कराते हुए पाता हूं तो मन ही मन प्रसन्न हो उठता हूं कि हमारा जीवन सुखी है, उन दम्पतियों की तरह नहीं है, जो प्रेम के नाम पर विवाह कर लेते हैं परन्तु पीछे हरदम उनके घर में कलह होती रहती है।

विमला, तुम मुझे इतना मान देती हो कि मैं कभी-कभी

सोचता हूं, मैं इस मान के योग्य भी हूं ? विमला, जब मैं कभी कभी पड़ौसी की पत्नी के खिलखिलाने का स्वर सुनता हूं तो मुझे उसी क्षण तुम्हारा विचारा आ जाता है।

विमला, आज यह कर्ज न होता तो हमारी एक ऐसी दुनियाँ होती जिनमें कृत्रिम वर्षा नहीं सुख की वर्षा होती, मुस्कराहटों के बादल आते। और दिल्ली गाड़ी से लखनऊ से एक रात का फासला है, मैं एक निश्वास से उसे पार कर जाता हूं।

विमला, तुम्हारा बनाया नींबू का आचार मिल गया था, इस बार तो सचमुच बहुत चटपटा बना है। आम का आचार कब भेज रही हो यही तो मौसम है न। तुम इस वर्ष की छुट्टी कब ले रही हो ? तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा में रहूंगा।

मधुर याद के साथ

तुम्हारा

कृष्ण।

अब तुम्हारे अच्छे से पत्र की प्रतीक्षा कर रही हूं।

तुम्हारी... विमला।

दो द्वीप

दो दीप

○○○○○○○○○

रजौरी : जम्मू के पास ही एक भारतीय सेना के कैम्प में राजेश अपनी वर्दी में कसा हुआ बैठा था। कपड़ों के तनाव से भी उसके शरीर और दिल की ऐंठन नहीं दब रही थी। सन्ध्या का अन्धकार धीरे-धीरे बढ़ रहा था। दूर के पहाड़ काले और भयानक लग रहे थे। राजेश के मन का अन्धकार बाहरी तिमिर से मेल खा रहा था।

इतने में एक सैनिक दो जलते हुए दीपक उसकी मेज से दूर रखने लगा...राजेश का ध्यान उस ओर खिंच गया।

"यह दीपक क्यों जला रहे हो ?"

"आज दिवाली है।"

दिवाली ! ! दो दीप...दो जलते हुए प्रदीप...इनकी बत्ती में तेल है, शक्ति है...हवा के थपेड़े इन्हें बुझाने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु यह तब भी नहीं बुझते, जब तक जीवन का आधार इनके पास है, जीने की प्रेरणा इनमें विद्यमान है।

राजेश के मन में उथल-पुथल मच गई, यह दो दीप..उन की जलती ज्योति, उसके अन्तर को कचोटने लगी। ऐसे ही दो दीप जला करते थे उमा की आँखों में।

उमा...उसकी अपनी उमा, मोतीलाल हीरालाल के स्वामी की पुत्री उमा। बीस वर्ष की चंचल युवती। सांवला सा रंग, जिस पर हल्का पीलापन छाया हुआ था। घने लम्बे बाल, जिनकी वेणी सदैव सामने झूमती रहती। लम्बा सा गठा हुआ शरीर, बात करती तो भ्रम होता फूल झड़ रहे हैं, हंसती तो धोखा हो जाता कोयल कूक रही है। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें ही आकर्षण का केन्द्र थीं। वह हंसती तो उनमें दो दीप जला करते, उनकी ज्योति कोई भिन्न नहीं थी इन दो दीपों की ज्योति से!

राजेश उठकर घबराहट में चक्कर लगाने लगा। प्रत्येक अफसर के तम्बू के बाहर दो दीप जल रहे थे। केवल दो दीप...राजेश के माथे पर पसीने की बूंदें चमकने लगीं। उसका ध्यान दो वर्ष पहले की दिवाली में होने वाली घटनाओं की ओर चला गया। राजेश तब विदेश का एक चक्कर लगा कर घर लौटा था। विदेश में चार वर्ष रहने पर उसे दिवाली कुछ भूल चुकी थी, जलते हुए दीपकों को देखने की चाह मन में भर उठी। वह घर में दीप जलते देख, दो मित्रों के साथ बाज़ार की ओर चल दिया।

कनाटप्लेस की शोभा देखने को बनती थी। प्रत्येक दुकान पर रंग-बिरंगे बल्ब लगे हुए थे, जो रह रह कर जग-

मगाते। इन विद्युत के दीपों के बीच ही कहीं छोटी दुकानों पर, तेल के दिये जल रहे थे। चहल-पहल से बाजार गरम था। आतिशबाजी भी छोड़ी जा रही थी। राजेश भीड़ में मित्रों से छुट गया, बहुत दूर निकल गया। जलते दीपों की झिलमिलाहट में एकाएक उसका ध्यान खिंच गया, एक लड़की का दुपट्टा जल रहा था एक दिये की बत्ती से, उसने ज्वाला पकड़ ली थी...लड़की हंस रही थी, बेखबर थी कि उसका दुपट्टा जल रहा है। उसके साथ वाले भी नहीं जानते थे। राजेश ने भाग कर दुपट्टा खींच लिया।

लड़की ने चीख मारी।

उसके पिता बोल उठे...

"दुष्ट बदमाश......"

उनकी दृष्टि जलते हुए दुपट्टे पर पड़ चुकी थी। उन्होंने राजेश को एक बार ऊपर से नीचे तक देखा और कृतज्ञ स्वर में बोले......

"महाशय! आपका लाख लाख धन्यवाद है, आपने मेरी लड़की की जान बचाई है। नहीं तो वह जल जाती......मैं बहुत शर्मिन्दा हूं अपनी बात के लिए, मैं अपने शब्द वापस लेता हूं......असल में मुझे पता न था कि दुपट्टा जल रहा है... मैं समझा भीड़ में प्राय: ऐसी घटनायें हो जाया करती हैं।"

उमा ने कृतज्ञता भरी दृष्टि से राजेश की ओर देखा, फिर एकाएक उसे आभास हुआ कि दुपट्टा तो उसके पास है नहीं। वह लजा गई, और लज्जा छुपाने के प्रयास में ही हंसने

लगी। तभी उसके विशाल मद भरे नयनों में ज्योति जलने लगी दूर जलते हुए दीपों से सुन्दर !

किसी ने राजेश के कन्धे पर हाथ रखा—"क्यों दोस्त, क्या बात है, इतने ग़मगीन नज़र आ रहे हो, चलो कैम्प में पूजा हो चुकी है, महात्मा जी की प्रार्थना भी हो चुकी है, तुम उस में भी सम्मिलित नहीं हुए, अब मिठाई बंटेगी, वहां तो चलो।"

राजेश अनमना सा उसके साथ हो लिया।

एक खेमे में मेज पर चीनी की प्लेट पड़ी थीं। राजेश बैठ गया एक कोने में, साथी उसकी बगल में था, वह बोलता जा रहा था......राजेश अपने ध्यान में मग्न था, उमा के पिता सेठ हीरालाल उसे अपने घर ही ले गए, मुंह मीठा कर लो मेरी बच्ची की जान बचाने वाले......

साथी का धप्प से सैनिक हाथ पीठ पर पड़ते ही वह चौंक उठा......"अरे मनहूस हो तुम......खाओ न यह दो रसगुल्ले, जम्मू से बंगाली हलवाई की दुकान से बनकर आये हैं। खाते क्यों नहीं ?"

दो केसरी रंग के रसगुल्ले उसकी प्लेट में पड़े थे। राजेश का हाथ कांप कर रह गया।......उसने संयम से फिर हाथ बढ़ाया कि रसगुल्ला उठा ले......ठीक इसी रङ्ग के दो रसगुल्ले दो हंसते हुए दीपकों ने राजेश के नयनों में होकर हृदय में झांकते हुए कहा था..."खाइये न"......राजेश ने हाथ उठाया...

"क्यों महाशय, आप कहां रहते हैं, क्या काम करते हैं ?" उमा के पिता पूछ रहे थे।

राजेश ने बता दिया कि वह इंजीनियरिंग पढ़ कर लौटा है विदेश से, अभी नौकरी की तलाश में है।

एकाएक घड़ी ने नौ बजाए। राजेश को मां का ख्याल आया, वह प्रतीक्षा कर रही होगी। उसने क्षमा मांगी, घर जाने के लिये छुट्टी चाही।

उमा मुस्करा दी थी, उसकी आँखें.... !

राजेश ने देखा, मेज के बीच दो मोमबत्तियाँ जल रही हैं। ऐसी ही ज्वाला उमा की आँखों में थी, जब वह मुस्करा कर बोली थी......आप कल हमारे यहां जरूर आइयें, अपनी माता जी को लेकर।

"कैप्टन राजेश......अपना खाना खाओ, ठंडा हुआ जा रहा है।" साथी फिर चिल्ला रहा था।

चेतना लौटी, राजेश ने कांच के गिलास में भरे हुए पानी को उठाया, मुँह से लगाने के लिये...कि वह दो आंखें फिर हंसती हुई दिखलाई दीं।

मसूरी के प्रिंस होटल में खाना खाते समय उन्हीं आँखों ने राजेश से कहा था......मिस्टर राजेश! अब तो देश को सैनिकों की आवश्यकता है, आप को भी चाहिए कि सेना में चले जायें। राजेश सिहरा, उसका ध्यान अपनी वर्दी की ओर गया।

राजेश अधिक देर तक नहीं बैठ सका वहाँ, खाना छोड़ कर आ गया, मुँह धोया उसने, जैसे मुंह पर जल छिड़कने से वह पिछली बातों को भी भुला देगा। उसने अपने तम्बू में

जाकर कपड़े बदल लिए और फिर कुछ स्वस्थ मन से बाहर चक्कर लगाने लगा।

उसके साथ वाले कैम्प में रिकार्ड बज रहे थे, संगीत की मधुर स्वर लहरी सन्नाटे को तोड़ रही थी। राजेश की मेज के पास जलते दो दीपकों की ज्योति अब तेज थी, वह हंस रहे थे, न जाने सैनिक उनमें कब आकर और तेल डाल गया था।

राजेश सोच रहा था, उसमें भी कोई तेल डाले। क्या मनुष्य को दिए की भांति यह आवश्यकता नहीं कि उसमें भी कोई तेल डाले, बत्ती ऊँची करे। मनुष्य का जीवन-दीप केवल स्नेह पान से ही जल पाता है।

राजेश को भी तो उमा ने कहा था, पिछली दीवाली को ..
'राजेश मैं...मैं जहाँ भी रहूंगी, तुम्हारी यादका दीप सदैव मेरे मन में जलता रहेगा। राजेश कठोर हृदय से सुनो, मैं किसी की वाग्दत्ता धरोहर हूं...तुम बाद में आये...राजेश...परन्तु मेरी भावनाओं को तुमने उकसा दिया और अब स्नेह-दीप जलने लगा है, राजेश यह सदा जलता रहेगा, मैं अपना स्नेह सदा इसमें डालती रहूंगी, बाहर से आने वाली आँधी से इसे दूर रखूंगी।'

राजेश को प्रथम बार पता चला कि उमा की आँखों में जलती ज्योति केवल आनन्द और प्रोत्साहन का सन्देश ही नहीं दे सकती और कुछ भी कह सकती है। राजेश को लगा, यह स्नेह की पावन ज्योतियां नहीं, यह सब धोखा है, भूल है। वह

एक नारी के जाल में फंसता आया। इन दो अंगारों की अग्नि में यूं ही फंसता आया। वह दूर हो जायगा इन से...।

आज उसे पता नहीं कहाँ है उमा और उसकी वह दो आँखें! काश्मीर युद्ध के लिए योद्धाओं की मांग होने लगी, राजेश भी भर्ती हो गया। उड़ी और नौशहरा में भी लड़ता रहा है वह। लैफ्टीनेंट से कैप्टन भी बना है। छुट्टी उसे मिल सकती है, पर वह छुट्टी पर जाना नहीं चाहता। माँ जम्मू आ गई है...और उसका है ही कौन? किसके लिए वह छुट्टी ले, मां को सप्ताह में एक बार देख आता है। उसे सन्देह होने लगा शायद उमा के हृदय में अब भी दीप जल रहा होगा। कौन जाने वह कहाँ है?

तभी एक सैनिक दौड़ता हुआ आया...साहब! साहब आपके शाल में दिये से आग लग गई, उतार डालिये। साथ ही सैनिक ने वह आग पत्तों द्वारा बुझा दी।

दिये जल रहे थे पूर्ववत् निश्चल, निस्पन्द। राजेश शून्य में देख रहा था।

आप ! तुम !!

आप ! तुम !!

बस नं० २ आने में अभी देर थी। लोगों का 'क्यू' चौराहे में लगे बड़े से वृक्ष के नीचे खड़ा था, रमेश का स्थान सब से आगे था......।

प्रातः साढ़े नौ बजे से वह अपना दिमाग फाईलों में खर्च करके अब पांच बजे को घर जा रहा था।

सामने खड़ी स्वास्तिका मैन्शन्ज पर उसका ध्यान गया। इतनी विशाल और भव्य अट्टालिका...ऊपर एक बहुत बड़ा सा साईन बोर्ड लगा था, स्वास्तिका मिलज़ और तभी साबुन, क्रीम, तेल, पाऊडर के डिब्बे रमेश की आंखों में घूमने लगे।

एकाएक किसी की ऊंची एड़ी से पैर दब जाने के कारण वह चौंक पड़ा।

"आई एम सारी मुझे अफसोस है।"

आवाज बड़ी सुरीली किन्तु बारीक थी।

रमेश स्वर-लहरी में पीड़ा भूल सा गया।

"ओह क्षमा तो मुझे मांगनी चाहिए थी, जो इस बसस्टेंड पर खड़ा ऊंघ रहा था। आप मुझे क्षमा कर दें...देवी जी।"

"देवी ! ओह"...ही...ही...वह खिल खिला दी। सांवले गले में पड़ी सफेद मोतियों की माला हिल उठी जैसे स्लेट पर चाक से लाईन खेंच दी गई हो। छोटे छोटे दांत लिपस्टिक भरे होंठों में नाच रहे थे, वह रमेश से भी आगे आकर खड़ी हो गई।

रमेश मुस्करा दिया। समता का युग है......नारी यदि जीवन की दौड़ में जबरदस्ती आगे खड़ी हो जाये तो पुरुष क्या उसे धक्का दे सकेगा ?

छोटे छोटे दांत फिर बाहर दिखने लगे और लिपस्टिक से रंगे होंठ फिर उस ओर देख रहे थे।

"क्या मैं आप का नाम जान सकती हूं ?"

"रमेश......रमेश कपूर।"

"मैं......मैं रमा अग्रवाल।"

लिपस्टिक वाले होंठ पुनः मुस्करा रहे थे।

रमेश को इस स्वयं के परिचय से कोई अचम्भा नहीं हुआ यह सब नई रोशनी में आता है।

बस नं० २ आ गई थी। रमा इस बस में चढ़ गई, रमेश भी साथ वाली सीट पर बैठ गया, टिकट काटने वाला आया, रमा के पास......"टिकट"

"दो।" रमा ने अंगुली से बताया रमेश की ओर मुस्करा कर देखा और बटुआ खोलने का उपक्रम करने लगी।

रमेश ने चवन्नी टिकट काटने वाले के हाथ में दे दी।

रमा बस की छोटी सी खिड़की में से बाहर......देखने लगी......

उस दिन दफ्तर से छुट्टी थी, शायद कोई बड़ा मेला था। रमेश काम पर नहीं गया। खाना खाकर घूमने निकल गया था......जब थक कर चूर हो गया तो वह कौफ़ी हाऊस में चला आया। अभी बैठा ही था......

"ओह् मिस्टर रमेश कपूर"......रमेश की आंखें ऊपर उठ गईं......।

"मैं हूं रमा!" रमा की गहरी हरी साड़ी सांवले रंग को कुछ काला बना रही थी।

रमेश अभी कुछ बोले......कि रमा जम कर वहां बैठ गई। धीरे से बोली, "कहीं आप को यूं ही तंग तो नहीं कर रही!" और रमेश की आंखों में देख कर वह मुस्करा दी।

लिपस्टिक से पुते होंठों में से छोटे-छोटे दाँत चमक रहे थे।

"आज आप को बहुत दिनों के बाद देखा है", रमा धीमे से बोली।

रमेश ने उत्तर देना चाहा कि रमा चौंक गई–"ओह्... राजेश तुम! आओ भई आओ, इनसे मिलो...यह हैं मेरे मित्र मिस्टर रमेश कपूर...और यह हैं मेरे दूर के 'कज़िन' राजेश।"

रमेश ने शिष्टता से दोनों हाथ जोड़े..."राजेश जी आप भी बैठिये न।"

राजेश कुर्सी खींच कर बैठ गया, इतने में बेयरा आर्डर लेने

आया। रमा ने तीनों के लिये आर्डर दिया—कौफी, मटन, कटलेट, और चिप्स।

रमेश ने एक सरसरी दृष्टि से देखा राजेश और रमा बहुत घुल घुल कर बातें कर रहे हैं। न जाने क्या बिल आयेगा, एक बार बिल का विचार उसके मन में आया...और पुनः वह खाने लगा।

रमा के कहकहे सारे कौफी हाऊस में गूंज रहे थे। रमेश भी उन में सहयोग दे रहा था।

किन्तु रह रह कर उसके कानों में यह आवाज भी पड़ जाती, बाबू जी घी समाप्त हो चुका, अभी भी पड़ोस वालों से लेकर मैंने काम चलाया था। घी का डिब्बा लेते आइयेगा। घी...डाल्डा! ...कोकोजम कुछ तो उसे लेकर घर जाना होगा नहीं तो शायद खाना न बने।

"मिस्टर रमेश...आप तो हमारे में दिलचस्पी नहीं ले रहे...लगता है आप किसी गहरे विचार में हैं—"रमा बोली।

"रमा तुम्हारे अच्छे दोस्त हैं कि तुम इतना नहीं जानती कि यह फ़िलास्फर हैं।" राजेश ने मुस्कराते हुए कहा।

फिलास्फर, रमेश, और विचारक, वह तो केवल इतना जानता है कि फाइलें आईं और फिर उन पर हस्ताक्षर करवा के आगे भेज दीं...कभी किसी चिट्ठी की एक प्रति टाइप कर दी।

राजेश और रमा हंस रहे थे। खाना भी समाप्त कर चुके थे। कौफी का एक कप उन्होंने और आर्डर दिया। रमा बोली "आप को हमें थोड़ी देर तक सहयोग तो अवश्य देना चाहिये न...आप तो खा नहीं रहे।"

"नहीं जी अभी खाता हूं"। और वह शीघ्र ही खाने लगा।

"क्यों रमेश जी सिनेमा चलेंगे ? अभी 'मैटनी' का समय तो है।"

रमेश का दिल धड़कने लगा। एक लड़की उसे निमन्त्रण दे और वह उसे अस्वीकार कर दे। यह लड़कियां भी...

रमेश ने कौफी का एक घूंट नीचे उतार कर कुछ शक्ति को महसूस किया।

"हां...हां, चलेंगे क्यों नहीं।" उसने बेयरा को बिल लाने के लिये कहा।

राजेश उठ कर बाथरूम की ओर चला गया।

रमा ने रमेश की ओर मुस्कराकर देखा, उसके छोटे छोटे दाँत लिपस्टिक वाले होठों में से मुस्करा रहे थे। रमेश ने देखा उस का मुख उस की गर्दन से अधिक सफेद है...जैसे ब्लेक-बोर्ड के ऊपर वाले भाग पर से अभी तक चाक साफ न किया गया हो। दुरंगा शरीर और रंग बिरंगी यह तितली।

बिल आ गया था पांच रुपये पन्द्रह आने। रमेश ने कांपते हाथों से बटुआ निकाला, रमा बोली, "कौफी हाऊस में चीजें "डेम चीप" (अत्यन्त सस्ती) हैं। क्यों मिस्टर रमेश ?"

रमेश ने अपने सब एक दो रुपये के छोटे नोट और जितनी इकन्नी दुअन्नियां पास थीं गिन कर पैसे पूरे किये। जब वह पैसे दे रहा था तो राजेश आ गया। सब बाहर निकल आये।

रमा बोली..."इतने पेट भर खाने के उपरान्त...आज तो पान खाने को जी चाहता है।"

"मैं पान ले आता हूं वहां बड़ी भीड़ है आप ज़रा ठहरिये।" रमेश बोला।

रमेश की टांगें कांप रही थीं। उसे वह दिन याद आ रहा था जब उसे नौकरी नहीं मिली थी और वह स्थान स्थान पर भटक रहा था।

वह एक बार भीड़ में घुसा...तो घर जाकर उसने चैन की सांस ली।

: ३ :

रमेश ने बस नं० २ में जाना छोड़ दिया था, परन्तु वह ही केवल एक ऐसी बस थी जो उसके दफ्तर से निकट पड़ती थी। किनमिन वर्षा हो रही थी। वह दूर वाले बसस्टेंड पर न जा, एक बार फिर बस नं० २ के स्टेंड पर कुछ पीछे सिकुड़ कर खड़ा था।

दो मास हो गये हैं...उसकी रमा से मुलाकात नहीं हुई... पर जहां भी वह लिपस्टिक वाले होंठ देखता उसे झट रमा का ख्याल आ जाता। बस आ गई...वह उस में चढ़ भी गया।

"मिस्टर रमेश।"

स्वर चिर परिचित था।

रमेश चौंक गया। नसों में खून तेजी से चलने लगा। दिल बुरी तरह धड़कने लगा जैसे चलते-चलते किसी ने अंगारा रख दिया हो उसके हृदय पर।

रमेश ने कांपते हाथ जोड़ दिये।

रमा ने एक बड़ा सा गुलाब का लाल फूल अपने बालों में रखा था...जो उसके विलायती ढंग के कटे बालों में लगा

यूं चमक रहा था मानों घने जंगल के अंधियारे में पड़ा हो।

"मिस्टर रमेश उस दिन आप ऐसे भागे कि क्या बतलाऊं, इतने दिन कहां थे ?"

रमेश लजा रहा था।

"आज तो आप के घर चलूंगी। पापा दौरे पर गये हैं, मां को कुछ बुरा नहीं लगता, मैं जहाँ चाहूं जाऊं।"

रमेश असमंजस में पड़ गया। उसके मन ने कहा, यार तुम भाग्यवान हो जो वह आप से आप तुम्हारे पर इतनी कृपा कर रही है।

"हां हां आप बड़ी खुशी से चलिये।"

"सच !!" वह मुस्करा रही थी। "आप के घर में कौन-कौन हैं ?"

"कोई नहीं मैं अकेला ही हूं।"

"सच !!"

इस बार प्रसन्नता फूट-फूट कर बाहर आ रही थी।

वह और भी सट कर रमेश के साथ बैठ गई।

रमेश का घर आ गया। वह उतर गया। रमा वास्तव में उसके पीछें आ रही थी।

"आप आज मुझ पर बड़ी कृपा कर रही हैं।" रमेश ने तनिक लजाते हुए कहा।

"नहीं नहीं मैं तो अपनी खुशी से जा रही हूं।" रमा के होंठ लिपस्टिक में से मुस्करा रहे थे। सांवला रंग फिर ऊपर से यह सुर्खी, दांत भयानक लगते थे।

जब गली और भी तंग हो गई तो रमेश धीरे से बोला... "आप को तकलीफ तो नहीं हो रही मिस रमा ?"

"नहीं जी।" और फिर वही मुस्कराहट ! मानों मुस्कराना ही उसका जीवन ध्येय है।

रमेश का घर आ गया...बहुत ही तंग सीढ़ियों पर से होता हुआ एक छोटा सा कमरा था दो मंजिले पर। साथ ही छोटी सी रसोई थी जहां से धुआ कमरे में आ रहा था। रमेश ने एक टूटी हुई कुर्सी पर रमा को बैठने का इशारा किया तो वह चिल्ला उठी..."यहां लाकर आपने मेरा अपमान किया है। यह आप मुझे किस के घर ले आये हैं।"

"यह घर मेरा ही है, आप खुद ही तो आना चाहती थीं, अब आई हैं तो बैठिये चाय पी कर जाइयेगा।"

"ओह चाय, इस कमरे में.. आप क्या...क्या सचमुच यह तुम्हारा घर है ! तुम्हारा...!"

रमेश उसके स्वर की घृणा का आभास पा रहा था।

"चाय पीकर जाइयेगा मिस रमा ।"

"ओह ! नहीं यहां मैं एक मिनट नहीं रह सकती मुझे क्या पता था कि तुम्हारा यह घर है।"

"रमा एक क्लर्क का घर और क्या हो सकता है ?"

"क्लर्क ।"

"हां क्लर्क...सिर्फ एक क्लर्क।"

रमा कमरे से बाहर जा चुकी थी। रमेश क्रोध में खड़ा था।

सिगरेट के टुकड़े

सिगरेट के टुकड़े

००००००००००००००००००००
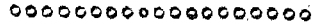
साधारण सी वस्तु कभी-कभी जीवन के बहुत बड़े रहस्य खोल देती है। सिगरेट के छोटे-छोटे अधजले टुकड़े, आप सब ने बस में, रास्ते में, किसी आफिस में, दुकान में, कहने का तात्पर्य यह है कि दैनिक जीवन में आँख से गुजरने वाले कई स्थानों में देखे होंगे। कई बार तो हम उन्हें रौंद कर चले जाते हैं और कई बार पांव से, हाथ के अखबार से या अन्य किसी वस्तु से दूर हटा देते हैं। सिगरेट के टुकड़े को देख कर नाक भौं सिकोड़ लेना, सिगरेट पीने वाले के लिए भी दूर की बात नहीं, तो जो नहीं पीते उनकी तो बात ही दूसरी है। लम्बी भूमिका न बाँध कर मैं कहानी कहती हूं।

मैंने भी सिगरेट के टुकड़े बहुत जगह देखे थे, हाट बाजार में यहाँ तक कि पिकनिक के स्थलों में भी, पहाड़ों पर और दिल्ली में भी। हमारे परिवार में कोई सिगरेट नहीं पीता, फिर भी दूसरे-तीसरे दिन सिगरेट के टुकड़े मुझे दिखलाई दे जाते हैं। जब भी मैं झाड़-पोंछ करती हूं उन्हें हटाती रहती

हूं। कोई मिलने वाला छोड़ जाता है शायद या जंगली घास की तरह वह अपने आप उग आते हैं। ख़ैर, जिन सिगरेट के टुकड़ों की कहानी मैं आपको सुना रही हूं, वह मैंने आगरा के एक मामूली से होटल के सबसे बढ़िया कमरे में देखे थे।

मैं दो दिन के लिए आगरा गई थी। मेरे पति को अपने सहकारियों के साथ "कैम्प" में रहना था। यह मामूली सा होटल "कैम्प" से दो तीन सौ गज की दूरी पर था। मैं इसी में ठहरी थी। होटल के मैनेजर की सूरत से पता चलता था कि वह "धूर्त्त" है। उसकी आँखें एक अजीब गोलाई से बार-बार घूमतीं और उठतीं। उसने दस बारह पान की पीक से भरे दांत अपने भद्दे होठों में से बाहर निकालते हुए मेरे पति को आश्वासन दिया कि वह मुझे सब से बढ़िया कमरे में रखेगा और वह (यानी मेरे पति) किसी बात की चिन्ता न करें।

मेरा सामान होटल के मुख्य भवन से हटा कर एक बड़े से कमरे में रखवा दिया गया। वह कमरा अन्य कमरों से अलग था। उसके सामने बरामदा भी था। बाहर चिक। कमरे के भीतर परदे भी बुरे नहीं थे। पिछली खिड़कियाँ बगीचे में खुलती थीं।

कमरे में पहुंचते ही एक तेज विलायती सुगन्ध से हमारा सिर झन्ना उठा। हां उसका प्रभाव सुखद था। मैंने सुगन्ध को पहिचान लिया, क्योंकि मेरी एक अमीर सहेली, विलायत से हर दूसरे-तीसरे महीने यही सुगन्ध मुझे भेज देती है। सुना है भारत में उसकी कीमत छप्पन रुपए बारह आने है, शायद

सेल्सटैक्स अलग । मेरी उस अमीर सहेली का यह एक छोटा सा मनोरंजन है...आज्ञा दें तो कहूं यह उसकी "हाबी" है। शायद आपको यह बात दिलचस्प लगे कि मैं उस सुगन्ध का क्या करती हूं । मैं भी उसे, एक कृत्रिम गर्वभरी मुस्कान से अपनी किसी रूठी भाभी को मनाने के लिए नहीं तो किसी नवदम्पति को उपहार रूप में दे देती हूं, हर बार एक ही वाक्य भी दोहरा देती हूं..."खास विलायत से मंगवाई है ।"

कहानी से फिर मैं भटक गई । तो उस सुगन्धित कमरे में, मेरा सामान टिकाकर, दोपहर का भोजन मेरे साथ खाने का वायदा करके, कुछ अनमने मन से वह "कैम्प" में चले गए । उनके मध्य वर्गीय समाज की मर्यादा को ज़रा सा धक्का लगा था कि वह ऐसे मामूली होटल में पत्नी को छोड़े जा रहे हैं। परन्तु इस कमरे की बनावट देख कर उनको हल्का सा सन्तोष हुआ ।

मैंने 'बेयरा' को चाय लाने के लिए कहा और स्वयं कमरे को घूम फिर कर देखने लगी ।

कमरे की सजावट के विषय में मैं अधिक कहूंगी तो आप ऊब जायेंगे । इसलिए केवल इतना कह देने से आपको अनुमान हो जाएगा कि कमरा किसी साधारण श्रेणी के ईसाई परिवार की बैठक दिखलाई देता था ।

कमरे के बीच में एक गोल मेज़ पड़ी थी, उस पर छपा खादी का एक मेजपोश बिछा था, और हरे रंग का ग्वालियर पाटरिज़ का बना लम्बा सा फूलदान रखा था । फूलदान में

कागज के गुलाब के फूल। इस प्लास्टिक के युग में कागज के फूल, बनावटी मुस्कानों और सस्ते 'मेकअप' की तरह बहुत प्रचार पा गये हैं। परन्तु मुझे इन्हें देख वैसे ही झुंझलाहट होती है, जैसे सुबह नाश्ता करते समय दूध के प्याले में पचहत्तर प्रतिशत पानी और पच्चीस प्रतिशत दूध देख कर होती है। छींट के मेजपोश पर असंख्य सिगरेट के टुकड़े बिखरे थे। सिगरेट के टुकड़ों से दबी हरे रंग की "ऐशट्रे" का केवल एक कोना मुझे दिखलाई दिया। कमरा साफ था, बिस्तर पर कोई सिलवट नहीं, फिर यह मेज शायद साफ नहीं की गई थी। मैंने देखा, सिगरेट की पिछली तरफ पर सुनहरा कागज लगा था। मैंने सुन रक्खा था कि सुनहरी कागज वाले सिगरेट बहुत मंहगे होते हैं।...इतने सारे एक दम उसने कैसे सुलगा लिये होंगे। ढेर से सिगरेट पीने में उस व्यक्ति को जाने कितना समय लग गया होगा। क्या उसकी सांस नहीं फूल गई? एक दम इतने सारे सिगरेट! मैंने खिड़की में देखा, वहां भी सिगरेट पड़े थे। कमरे में एक आराम कुरसी पड़ी थी, उसके नीचे भी अधजले सिगरेट पड़े थे। गोल मेज के नीचे, "क्रेवन ए" का खाली डिब्बा पड़ा था।

तो वह व्यक्ति "क्रेवन ऐ" का सिगरेट पीने वाला था। वाह! वाह! बहुत शौकीन था। मैंने बहुत से धनीमानी लोगों को देखा है। कोई तो जेब में "कैपस्टन" रखते और पीते हैं "चारमिनार।" कोई "कैप्स्टन" पीते हैं और हाथ में "५५५" का डिब्बा रखते हैं। हां कुछ ऐसे भी होते है जो मांग कर काम

चला लेते हैं, वह माँग कर ही सिगरेट पीते हैं। जो "क्रेवन ए" पीता है, वह अवश्य ही सम्पन्न व्यक्ति होगा।

तो "वह" आराम कुर्सी पर बैठकर सिगरेट पीता रहा, खिड़की के पास खड़े होकर भी पीता रहा, तभी तो इतने टुकड़े हैं। मैंने टुकड़ों की संख्या को सहम कर देखा...जैसे वह सब के सब मेरी ओर देख रहे हों। एक-एक सिगरेट के टुकड़े में, एक-एक अरमान जल रहा था, सुलग रहा था। हो सकता है एक ही अरमान बार-बार सिगरेट की उमस और गरमी में जला हो। शायद अरमान की अभी राख भी न हुई होगी। जाने कौन अभागा यहां सिगरेट फूंकता रहा।

मेरा मन उस अज्ञात व्यक्ति के लिए समवेदना से भर उठा। जिज्ञासा नारी के चरित्र का एक विशेष अंग है। पुरुष भी जिज्ञासु होते हैं। पर उस समय मेरी जिज्ञासा इतनी तीव्र हो रही थी, कि मैंने अपने से ही बहस करना उचित नहीं समझा। मेरा मन उन सिगरेट के टुकड़ों की कहानी जानने के लिए उतावला हो गया।

इतने में 'बेयरा' चाय ले आया। मैंने उससे पूछा—"मेरे आने से पहले इस कमरे में कौन आया था ? वह मुस्करा कर बोला..."कोई बाबू साहब आये थे। रात को नौ बजे आयें, खाना भी नहीं खाया। एक बार उन्होंने चाय पी थी और दो "थरमास" भरवा कर रख ली थी।"

सुबह छः बजे जब 'बेयरा' उन्हें चाय देने आया था, तो वह सोये न थे, वैसे ही सूट बूट पहने बैठे थे। सुबह उन्होंने

चाय नहीं पी । केवल अपना बिल मंगवा कर पैसे दे कर व सुबह-सुबह चले गए थे ।

'बेयरा' ने यह भी बतलाया कि अभी सबेरे के नौ बजे थे और सफाई करने वाला नहीं आया था, यदि मैं चाहूं तो 'बेयरा' सफाई करवा सकता था।

जाने किस अज्ञात प्रेरणा वश होकर मैंने कहा था... "सफाई की आवश्यकता नहीं।" फिर मैंने झिझकते हुए उससे पूछ लिया कि वह देखने में कैसे थे ? 'बेयरा' ने अपनी बुद्धि के अनुसार बतलाया कि वह चेकदार गरम कोट पहने थे जिसका रंग कम दूध वाली चाय जैसा लगता था, उसमें लाल रंग भी मिश्रित था, उनकी पतलून का रंग वैसा ही था, जैसा आम तौर पर बाबू लोगों की पतलून का होता है। उनका कद बहुत लम्बा था और आँखें भूरीं।

मेरे पूछने पर कि बाबू साहब कुछ उदास थे ? 'बेयरा' ने उत्तर दिया—नहीं, वह उदास तो नहीं थे, पर कुछ ऐसा लगता था, मानो वह अपने आप से बातें कर रहे थे। "क्यों बीबी जी ? क्या आप की कुछ जान-पहिचान के थे ?"

मैंने उसका उत्तर नहीं दिया, केवल उसे यही कहा था... "जाओ तुम अपना काम देखो।"

जो कुछ 'बेयरा' ने कहा, वह तो किसी फिल्मी नायक का सा आचरण लगता था। मैंने दूसरी बन्द खिड़की को खोल डाला, अपने लिए चाय का प्याला बना लिया और उसी आराम कुरसी पर बैठ गई जिस पर शायद कुछ घंटे "वह" बैठा था।

एकाएक मुझे अपनी मनोदशा पर स्वयं हंसी आ गई। मुझे कौन सी जासूसी करनी है ? होगा कोई। सिगरेट पीता रहा है तो अपने। कलेजा जलाता रहा है तो अपना। समस्या का समाधान ढूंढता रहा है, तो अपने लिए। मुझे उससे क्या लेना देना।

अभी मैंने दो-तीन घूंट चाय भी न पी होगी कि मेरा मन फिर उन सिगरेट के टुकड़ों में फंस गया। काश ! हम अपने जीवन से ही मतलब रक्खें। जो मजा दूसरों की जिन्दगी में झांकने से आता है, शायद उतना ही किसी उपन्यास पढ़ने से आता है। मेरे मन में भिन्न-भिन्न कल्पनाएं जन्म लेने लगीं। इस आगरा शहर में, जहाँ प्रेम का इतिहास संगमरमर में लिखा गया है, वह बेचारा किसी निष्ठुर प्रेमिका द्वारा तो नहीं सताया गया ? परन्तु फिर मुझे विचार आया, "क्रेवन ए" के सिगरेट पीने वाला एक तो क्या, दस प्रेमिकाओं की निष्ठुरता सह सकता है। इस वर्ग की प्रेमिकाएं भी, एक नहीं अनेक प्रेमियों की धड़कने बढ़ा सकती हैं। वह साड़ी के रङ्ग क देख कर उस रङ्ग को पसन्द करने वाले प्रेमी के साथ शाम बिताती हैं।

मेरी कल्पना ने उस व्यक्ति को सिगरेट पीते, राख झाड़ते और फिर दियासिलाई से सिगरेट जलाते देख लिया। एकाएक मैंने अपने आप को टोका, मैं कहीं भूल कर रही थी, वहाँ कोई दियासलाई का टुकड़ा नहीं था। मैं अपनी मूर्खता पर हंस दी। विदेशी फिल्मों का नायक, लाल भूरा चेकदार

कोट पहनने वाला, माचिस से सिगरेट क्यों जलाता होगा। उसके पास एक सिगरेट 'लाइटर' होगा। 'लाइटर' भी नया होगा, क्योंकि उसमें 'फ्युएल' खत्म नहीं हुआ और वह इतने सिगरेट एक दम जलाने में समर्थ हुआ। शायद यह 'लाइटर' उसे दिवाली पर उपहार में मिला होगा—तब दिवाली बीते केवल एक सप्ताह व्यतीत हुआ था।

उस पुरुष ने क्या स्वास्थ्य को ठीक रखने के विषय में कुछ नहीं पढ़ा? उसे युवक मानने को मेरा मन तैयार नहीं था, क्योंकि युवक ऐसी मनोवस्था में उत्तेजना से भर उठते हैं, वह ढेर से सिगरेट एक साथ नहीं पी डालते। इतने से सिगरेट पीने, पूरी रात भर जागने से एक बात तो स्पष्ट थी कि वह तीस वर्ष से ऊपर और चालीस के बीच रहा होगा। यह एकाग्रता, यह मनन, और इतना गहन सोच, वही व्यक्ति कर सकता है, जिसमें मानसिक प्रौढ़ता आ चुकी हो और जो जीवन में हंसी की फुलझड़ियों की कृत्रिमता समझता हो। व्यक्ति समर्थ है, उसे जीविका कमाने की कोई चिन्ता नहीं, क्योंकि वह आसानी से रुपया खर्च कर सकता है और होटल में रह कर पूरे रुपये दे कर भी वह भोजन नहीं खाता। साधारण स्थिति का आदमी, रुपये दे कर खायेगा क्यों नहीं? उसे अपने मानसिक तूफान से अधिक अपने बटुए में से निकलने वाले रुपयों की चिन्ता होगी।

वाद विवाद में पड़ना मेरा उद्देश्य नहीं, वह तो बात की बात है। मुझे विश्वास होता जा रहा था कि वह व्यक्ति आगरा

छोड़ कर चला गया है और रात भर यहाँ केवल निश्चय ही करता रहा है। अवश्य ही जीवन की बहुत जटिल समस्या रही होगी इसके सामने।

मेरा चाय का प्याला ठंडा हो गया था। मैंने खिड़की से ठंडी चाय फेंकनी चाही, परन्तु बगीचे में माली को काम करते देख, कमरे से सटे गुसलखाने में चली गई। चाय वहां फेंक दी, परन्तु वहां भी वही सुनहरी कागज वाले सिगरेट पड़े थे। यहां भी वह अवश्य ही बैठा होगा। वहां एक "बिल" के फटे टुकड़े पड़े थे। मैंने वह उठा कर देखा तो इसी होटल का बिल था, ग्यारह रुपये आठ आना रात का किराया, तीन रुपये चाय के, और एक रुपया सर्विस। होटल वालों ने लगभग सोलह रुपये उससे ठग लिये थे। ऊपर नाम भी लिखा था... "श्री प्रकाशचन्द्र सक्सेना।" ओह! मेरी कल्पना को ज़रा सा धक्का लगा, मेरी जासूसी के नायक का उतना ही साधारण नाम था, जितना साधारण यह होटल। मेरा मन अनजाने ही विद्रूप से भर उठा। उंह! क्यों? मैं वहां किसी बड़े साहित्यिक का नाम, चित्रकारका या किसी वैज्ञानिक का नाम देखना चाहती थी! ठीक तो है। सामान्य पुरुषों के जैसे नाम होते वैसा नाम है।

मैं कमरे में लौट आई। मैं सरसरी दृष्टि से गुसलखाने की सभी वस्तुओं को देख आई थी। और मुझे कुछ नहीं मिला। कहीं कुछ था ही नहीं।

चाय बनाई। वह ठंडी थी। 'बेयरा' को आवाज दी, तो दोबारा नई चाय ले आया। इस बार वह बड़ी ढिढाई से हंसता

हुआ बोला—"क्यों बीबी जी, अब तो सिगरेट के टुकड़े बाहर फेंक दूं ।"

मुझे लगा, यह 'बेयरा' मेरी कमजोरी जान गया है कि मैं इन सिगरेट के टुकड़ों में कुछ खोजने का प्रयत्न कर रही हूं । मैंने भी फौरन उत्तर दिया, "हां झाड़ू लाओ, सब अच्छी तरह से इकट्ठे कर लो ।"

वह अपने कन्धे पर रखा मैला तौलिया फैलाता हुआ बोला, "नहीं बीबी जी मैं इसी में ही सब इकट्ठे कर लूंगा ।" मेरे देखते देखते उसने सिगरटों के टुकड़े सम्भालने शुरू कर दिये । मानो वह किसी गूढ़ रहस्य को मुझ से छिपाने के लिये वह सब उठाये लिये जा रहा है ।

सिगरटों के टुकड़े इकट्ठे करते ही "ऐश-ट्रे" के नीचे एक पत्र दबा हुआ मिल गया । पत्र का लिफाफा बन्द नहीं था, खुला था ।

मैंने 'बेयरा' से आंख बचा कर वह उठा लिया । 'बेयरा' को शायद उस कागज के टुकड़े में कोई दिलचस्पी नहीं थी । वह अपनी दिलचस्पी का सामान, सिगरेट के टुकड़े उठा कर चलता बना । मैंने झट से वह पत्र खोला और धड़कते हृदय से पढ़ने लगी, मानो वह प्रकाशचन्द्र सक्सेना ने अपने रिश्तेदारों और मित्रों के लिए न लिख कर मेरे लिए ही लिखा हो । सब से पहले मैंने पत्र के नीचे देखा, लिखा था : तुम्हारा प्रकाश । मैंने शुरू से पत्र पढ़ना आरम्भ किया ।

प्रिय उमा,

मुझे अफ़सोस है कि विवाह के तीसरे दिन ही हम समझौता न कर पाये। तुम चाहती हो, मैं सिगरेट पीना छोड़ दूं, परन्तु मैं प्रयत्न करके भी सिगरेट नहीं छोड़ सकता, तुम्हें मुझ से इतनी घृणा थी तो विवाह करने पर क्यों राज़ी हो गई थीं। तुम्हें और तुम्हारे पिता जी को पता था कि मैं सिगरेट पीता हूं। तुम्हें समझने का अवसर मिलता, भावनाओं के आदान प्रदान का अवसर मिलता तो शायद मैं समझ जाता कि मुझे सिगरेट पीना छोड़ देना चाहिए और मैं शायद मान लेता, परन्तु जाने क्यों तुमने मुझे अवसर ही नहीं दिया। एक दम नादिरशाही आज्ञा जारी कर दी कि तुम मुझ से बोलोगी ही तब, जब मैं सिगरेट छोड़ दूंगा। तो मेमसाहब, शायद तुम्हें मां ने यह ही सिखला दिया था कि तुम पति पर हुक्म चलाना सीखो। यह नहीं बतलाया था कि हुक्म देने से पहले, वैसी स्थिति तो पैदा कर लो। खैर, मैं गाँव जा रहा हूं, वहां एक सप्ताह तक तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा करूंगा। यदि तुम मुझ से मिलना स्वीकार करो, इसी परिस्थिति में जिस में मैं हूं, स्वीकार्य हो तो मुझे लौटती डाक से पत्र लिख देना। यदि इस सप्ताह के भीतर तुम्हारा कोई उत्तर नहीं आया, तो मैं समझ लूंगा कि तुम सम्बन्ध विच्छेद चाहती हो। यदि उत्तर न देना चाहो, तो तुम स्वयं को स्वतन्त्र समझना, मैं विवश नहीं करूंगा। गांव का पता दे रहा हूं।

प्रकाशचन्द्र सक्सेना
द्वारा श्री मुरली मनोहर
मैनपुरी।

तुम्हारा
प्रकाश।

पत्र मेरे हाथ में था। चाय ठंडी हो रही थी। पत्र पढ़ कर उस प्रकाशचन्द्र के लिये मेरी सहानुभूति और बढ़ गई। मैंने पता देखा आगरा में ही राजामंडी की एक सड़क का पता था। मैंने मन ही मन सोच लिया कि इन उमा देवी से अवश्य मिलूंगी और समझाने का प्रयत्न करूंगी। यह भारत है, अमरीका नहीं कि इन छोटी छोटी बातों पर विवाह सम्बन्ध विच्छेद हो जायें। जाने आजकल कि यह लड़कियां विवाह को एक खिलवाड़ क्यों समझती हैं। मैंने और देर करनी उचित नहीं समझी, लिफाफे पर दो आने का टिकट लगा था और दो आने का मैंने अपने बटुए में से लगाकर, 'बेयरा' को बुलवा कर वह चिट्ठी डाक में छोड़ने के लिए कहा। मैं नहीं चाहती थी कि इन सिगरेट के टुकड़ों की तरह ही उन दोनों के वैवाहिक जीवन के टुकड़े भी हो जायें। जाने आज भी उनका समझौता हुआ है या नहीं। जहां कहीं भी सिगरेट के टुकड़े देखती हूं तो मुझे उस घटना की याद हो आती है।

———

सातवीं बहन

सातवीं बहन

मां की एक लम्बी चीख सुनकर शोभा के हाथ से पंखा छूट गया, वही पंखा जिस से वह चूल्हा सुलगा रही थी।

चूल्हा किसी तरह से सुलग ही नहीं रहा, चाहे शोभा इतनी कोशिश कर रही है। इस बार की चीख इतनी हृदय-विदारक थी कि शोभा के हाथ से पंखा छूट गया। शोभा के हाथ अभी भी कांप रहे हैं, माथे पर पसीने की बूंदें चमकने लगीं। शोभा ने चूल्हे के निचले भाग को चिमटे से हिलाया जल्दी में चिमटा शोभा के पांव पर गिर गया।

मां कराह रही है। सातवीं बार कराह रही है। रात का पिछला पहर। रात भी और प्रातः भी, गीली धुंधली ओस भरी नवम्बर की प्रातः। प्रातः के सन्नाटे में मां की चीखें बहुत ज़ोर से सुनाई देती हैं।

मां की दबी-दबी, मुंह में ठूंसे हुए कपड़े से दबी आवाज़, शोभा को आ रही है। चीखें दूर तक न सुनाई दें इसीलिये

उसने मुंह में कपड़ा ठूंसा हुआ है।

शोभा सोच रही है मातृत्व भी कभी भार हो सकता है। उसकी मां अवश्य सोच रही होगी वह मां कभी न बनती। काश ! शोभा कभी पैदा न होती और फिर शोभा के साथ उसकी पाँच बहनें और। दो नहीं तीन नहीं इकट्ठी छः हैं ! इन्हीं छः को देखकर शोभा के पिता झुंझला उठते हैं जैसे कोई किसान अपनी पकी फसल के खेत में वर्षा होते देख घबरा जाता है।

मां फिर चीखीं।

आह ! मां चिल्ला रही हैं।

मां तो पूजनीय हैं। शोभा ने ऐसा पढ़ा है। मां वन्दनीय हैं। शोभा ने ऐसा सोचा है। मां के साथ नीच व्यवहार भी किया जा सकता है, शोभा ने ऐसा देखा है।

शोभा की बुआ कन्या का जन्म होने पर यही कहती हैं, 'भैया घबराओ नहीं' अभी कौन बूढ़े हो गये हो। सारा जीवन पड़ा है। अब की नहीं अगली बार लड़का ज़रूर होगा। हनुमान जी को प्रसाद चढ़ायेंगे।'

भैया भी, पीठ पर बहिन का सहारा पा हनुमान जी का ध्यान कर, प्रकृति को चुनौति दे देते।

फिर अबोध कन्या का जन्म होता। शोभा सुनती एक और बहन आई है। उसका हृदय धड़कने लग जाता। शोभा ने सुन रखा है जब वह पैदा हुई थी तब उसके पिता ने उसकी नीली आँखों को देखकर मित्रों को मिठाई खिलाई थी। उन्होंने

भी भरपेट खाकर उसका नाम शोभा रख दिया था। पिता समझते थे आज शोभा आई है कल शोभन आयेगा। भोली बालिका अपना भैया लायेगी।

दो वर्ष से शोभा मैट्रिक पास करके घर बैठी है। पिता की आय केवल दो सौ पच्चास रुपये है जो आजकल पचास रुपये के समान हो गई हैं, जिससे किसी तरह दोनों वक्त दाल रोटी खाना भी मुश्किल हो गया है। चाय सिगरेट और अख-बार यह फिजूलखर्ची शोभा के पिता ने कभी नहीं की।

चूल्हे में आग सुलग रही थी। वह कोयलों के अंगारे देख कर शोभा को अपनी बहनों के निर्दोष चेहरे याद आ गए। वह सब सोई पड़ी हैं। आध पेट खाने पर भी उनकी नींद में कोई फर्क नहीं। नींद अवश्य आती है। उसके पिता की पुत्र पाने की इच्छा कभी-कभी इतनी बलवती होती है कि वह इन मासूम लड़कियों को, घर में इधर-उधर आते-जाते देख उसी तरह पीटने लगते हैं जैसे कसाई बूचड़खाने में ले जाने वाली गायों को अपने झुंड में से निकलता देख पीटने लगता है। पुत्र की कामना करने वाले पिता के घर में इन बेचारियां का जन्म हुआ है। इनका दोष ? पिता को इन पर नहीं झल्लाना चाहिये। इन्हीं बातों को लेकर शोभा को घृणा है। जब शोभा की बहन जन्म लेती तो दो तीन तक शोभा पिता से नज़र चुराती। उसे पता होता की पिता किस बात पर झल्लायेंगे, चिल्लायेंगे। किसी भी समय वह उनके क्रोध का शिकार हो सकती है, मानों एक लड़की का आना

अनिष्टकारक हुआ। उसे अपनी बहन से भी घृणा हो जाती, फिर उससे सहानुभूति भी होती कि यह सुन्दर भोला सा नन्हा सा रक्त मांस का टुकड़ा जिस ने एक व्यक्ति के लड़का होने के प्रयोग में जन्म लिया है, उसका क्या दोष ? उसे भी तो इसी घर में रह कर निर्वाह करना है।

कुछ दिनों के बाद जब मां बिस्तर से उठ जाती तब किसी लड़की को पीटती ही रहतीं। अपने मन के ज्वालामुखी का तूफान उन बालिकाओं पर निकालतीं।

आज मां फिर कराह रही हैं। न जाने आज क्या होगा ?

शोभा ने देखा, पानी उबलने लगा है। पानी में भाप निकल रही है।

शोभा के हृदय में भी ऐसी ही बेचैनी है। उसका दम घुट रहा है, हृदय धुक-धुक चल रहा है, धौंकनी की तरह। शोभा को मैट्रिक तक शिक्षा मिली है। कुछ उसने मां से लुक-छिपकर किताबें भी पढ़ी हैं। मुहल्ले की स्त्रियों की जब मज-लिस लगती है तब वह अश्लील और भद्दे मज़ाक सुने हैं जिन सबका अर्थ वह समझती है। उसे पता है, बच्चा कैसे और क्यों जन्म लेता है।

कई बार शोभा अपने पिता की ओर देखती तो उसे यों लगता, मानों वह ऐसा कुत्ता है जो कूड़े को बार-बार सूंघता है। उस समय शोभा को अपने बाप से घृणा हो जाती। कोई छोटी सी नौकरी भी तो बुआ नहीं करने देतीं। जब जब शोभा ने चाहा है वह इन बिल-बिलाती रेंगती, कीड़े-मकोड़ों

जैसी बहनों को सहायता दे। कोई न कोई नौकरी कर ले तो बुआ समाज! समाज!! चिल्लाती हैं। मर्यादा का ढिंढ़ोरा पीटती हैं।

मां कराहती जा रही हैं। अभी तक कुछ हो ही नहीं रहा। पिता जी...उफ़! हे भगवान! क्या वह छत पर हैं? उनके भारी-भारी कदम छत पर चहलकदमी कर रहे हैं। लड़के की प्रतीक्षा में घड़ियाँ गिन रहे हैं।

पड़ोस में एक बंगाली बाबू है। शोभा ने उसकी लड़की को देखा। वह अपने लम्बे-लम्बे बाल खोले स्वच्छन्दता से गली में घूम रही थी। बुआ उसे देखते ही बोलीं थीं...'यह देखा बंगाल की जादूगरनी। मेरी लड़की होती तो गला घोंट देती।'

शोभा को झुंझलाहट हुई। उसका संसार इन दीवारों और छोटी बहनों को लेकर ही है। यदि वह खिड़की में खड़ी होती तो बुआ डांटतीं। यदि यह घर के भीतर देखती तो केवल यही देखती...उसकी मां बच्ची को दूध पिला रही है। दुधारू गाय भी टाँग मारती है, सींग हिलाती है। परन्तु शोभा की माँ सदैव मौन रहती है। फिर बच्चों के दाँत निकलते। रात-रात भर मां लोरियाँ सुनातीं। बच्ची को गोद में लिये लिये घूमतीं और फिर उसी मां को कुछ होने लगता। वह कै करने लगती। पीली पीली पड़ जातीं। शोभा देखती, मां का पेट बढ़ रहा है। वह बड़ी मुश्किल से चल रही हैं। मां बारबार बलि चढ़ती हैं।

मां ज़हर क्यों नहीं खा लेती, यह कैसा जीवन है? शोभा को घबराहट होने लगी। उसकी अंगुलियाँ जो अभी पंखा चला रही थीं, अब ऐंठने लगीं। उसका जी चाहा उठ कर पिता का गला घोंट दे। बुआ का गला घोंट दे, जो पिता को उकसाती रहती हैं।

ओह ! मां ने एक दो तीन चार न जाने कितनी चीखें एक साथ लीं और फिर शान्त। तभी नवजात शिशु की आवाज सुनी—ट्याहां ट्याहां। चिर परिचित आवाज़। जिसे वह कई बार सुन चुकी है।

उस कमरे का दरवाजा खुला, उसकी बुआ चिल्लाई, "गरम पानी, ला जल्दी कर। देखती क्या है। तुम राँडों ने तो मेरे फूल से भाई को घेर रखा है। पहले क्या कम थीं जो एक और आ गई।"

शोभा की टाँगें लड़खड़ा गईं। सिर घूमने लगा, बुआ बुड़बुड़ाती हुई पानी लेकर चली गईं। शोभा को ऐसे लगा मानो संसार ही अन्धकारमय है। जीवन जैसे एक जुआ है, जिस में बेचारी मां इतना कष्ट पा कर भी बार-बार हार जाती हैं।

एक और बहन ! सातवीं बहन !! शोभा के छोटे कपड़े दूसरी पहनती, दूसरी के तीसरी और अब छठी के सातवीं पहनेगी। चीथड़े बढ़ते जायेंगे। सुबह जो लड़कियों को चाय मिलती है उसका दूध और भी कम हो जायेगा। दाल में पानी भी बढ़ जायेगा। राशन कार्ड पर एक और नाम लिखा जायेगा। पिता जी...वह कसाई। मां की कठोर वाणी। शोभा ने देखा उसके पिता ऊपर से नीचे आ गये हैं। शोभा का शरीर भय से बरफ़ हो गया। घृणा से उसने शरीर को झटका दिया। शोभा को साहस न हुआ कि वहां जाकर वह सातवीं बहन को देखे या पिता का सामना करे। अनजान में ही उसके पैर घर की ड्योढ़ी से बाहर निकल गये। शोभा को लगा उसका दम घुट जायगा। उसकी सांस मुश्किल से निकल रही है वह कहीं खुली हवा में सांस ले।

समस्या उलझती गई

समस्या उलझती गई
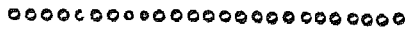
निशा बालों में फूल टाँकने जा रही थी, क्योंकि पति के साथ एक दावत में जा रही है। सफेद जार्जेट की सितारों वाली साड़ी, सफेद ब्लाऊज़, गले में मोतियों की माला। वेणी टांकते समय उसने शीशे में देखा। वह स्वयं स्तम्भित रह गई। वह भी सुन्दर लग सकती है, इस का अनुमान उसें नहीं था।

पति किशोर ने सहायता की थोड़ी सी। फूलों की वेणी उसने लगा दी।

"आज तुम अच्छी लग रही हो।" किशोर ने किंचित मुस्कराते हुए कहा।

निशा के हृदय में खलबली हुई, जैसे किसी ने गरम चाय की प्याली गले पर उंडेल दी हो। काश! राजा भी देखता, वह इतनी सुन्दर दिखलाई दे सकती है।

पिछले कुछ महीने से निशा राजा की ओर खिंची चली जा रही है। राजा उसे अच्छा लगता है।

किशोर ने कहा—"क्यों, पहले से ही देर हो रही है, तिस पर तुम अपने रूप की स्वयं प्रशंसा करने लगीं।"

निशा ने उत्तर नहीं दिया, केवल इतना कहा—"चलो देर हो रही है न।"

दावत में सब को आशा थी, निशा बातचीत करेगी। उस के पति के मित्र श्री तथा श्रीमती खन्ना कोई भी दावत निशा के बिना पूरी न समझते। आज भी अपने अन्य मित्रों के साथ उन्होंने निशा और किशोर को बुलाया था।

निशा और दिनों से आज विशेष सावधानी से कपड़े पहन कर आई थी। न जाने क्या प्रेरणा थी ? कोई भी उपस्थित व्यक्ति न समझ सका।

श्रीमती लाल ने निशा से बातचीत जमाने का प्रयत्न किया। सफल न हो सकीं। किशोर बातचीत में व्यस्त था। निशा का ध्यान बार-बार राजा की ओर जाता। वह वहां उपस्थित पुरुषों में राजा को देखने का प्रयास करती। परन्तु एक भी ऐसा नहीं था उनमें जो राजा के निकट पहुंच सकता हो।

इस घटना से निशा के मन पर एक अजीब प्रभाव पड़ा। वह अनुभव करने लगी, राजा अनायास ही उसकी चेतना, भावना और उपस्थिति का एक अंग बन गया है। निशा और किशोर के ब्याह को काफी वर्ष हो गये हैं। परिवार में दो बच्चे भी हैं। किशोर साधारण मध्यम श्रेणी का अफ़सर है। निशा भी एक सरकारी दफ्तर में काम करती है। राजा उस का सहकारी है।

एक बार निशा को लगा था, वह पति के मित्र मेहता के बहुत निकट आ गई है। उस भावना पर कुछ ही महीनों में निशा ने काबू पा लिया था। मेहता और श्रीमती मेहता उनके मित्रों में से हैं।

किशोर निशा से पूर्ण रूप से सन्तुष्ट है। निशा सदैव उस के सुख दुःख में साथ देती है। निशा के कल्पना प्रधान मस्तिष्क में कभी-कभी कोई विचार उठ जाता तो वह तूफान खड़ा कर देता। वह महीनों उस भावना से परेशान रहती। यदि वह समाज सुधार, प्रौढ़ शिक्षा, नारी उत्थान आदि में प्रेरित भावना होती, तो किशोर बहुत प्रोत्साहन देता। यदि उस से भिन्न प्रकार की दिलचस्पी होती तो वह उपेक्षा भी करता। कभी-कभी निशा को किसी सम्बन्धी की चिन्ता इतनी खा जाती कि दिन रात उस सम्बन्धी के विषय में सोचती, उनको सहायता देने के उपाय निकालती।

निशा का बचपन बहुत दुःखी बीता था। उसमें प्यार का नितान्त अभाव था। इसीलिए निशा संवेदनशील अधिक थी। हवा की सरसराहट जैसी हल्की बात कभी उसके मर्म को छू जाती और कभी कटु से कटु बात भी उसे प्रभावित न करती। किशोर उसे प्यार करता, पति जितना पत्नी से कर सकता, मित्र जितना मित्र से, पुरुष जितना नारी से। फिर भी निशा का मन सदैव प्यार की खोज में भटकता रहता। उसके मानस पट पर अनेक स्नेह भरे रेखा-चित्र बनते और मिट जाते। उनका अस्तित्व समाप्त हो जाता—जैसे पड़ौसी का छोटा सा

पिकनीज कुत्ता, अपनी हरी साड़ी, चमड़े के रंग का बटुआ। तीसरी मंजिल वालों की माँ। उस बुढ़िया से निशा को इतना लगाव है कि जब-जब निशा काम से लौटती, वह बुढ़िया संध्या को आ कर बतलाती...... आज रामायण से कथा पढ़ी है तो कल महाभारत से। घंटों चर्चा होती, यह भी निशा की स्नेह पात्र है। इन्हीं बुढ़िया जी की एक बेटी है, उस का पति शराबी है, मार-पीट करता है। निशा उस विषय में भी पूरी-पूरी सलाह देती, आज ऐसे करना, कल यह धमकी देना, परसों खाना अपने हाथ से खिलाना। जिस किस तरह पति को वश में करने के उपाय बतलाती।

किशोर उसके मित्रों तथा परिचितों की विभिन्नता देख कर कहते......'तुम्हारा हृदय चिड़ियाघर है और दिमाग भानमती का पिटारा, या किसी पुराने वैद्य जी द्वारा छोड़ी गई पुस्तक, जिस में प्रत्येक व्यक्ति के लिये स्नेह है, उसके प्रश्न का उत्तर है और आवश्यकता पड़ने पर उसकी जरूरत के लिए सामान भी है।' ऐसी निशा को एक दिन लगा, उसका सहकारी राजा उसे अतीव प्रिय है।

निशा ने इसे अपनी हार माना। उसका हृदय एकाएक उदास हो गया। यह कैसी बात है, वह तो न समझती थी, जीवन में कभी ऐसा भी होगा। वह काम पर आती तो जैसे होता राजा से मुंह चुराती। घंटों इस विषय में सोचती। बीस वर्ष पहले माता-पिता के लिए वह लड़की-लड़का उलझन हुआ करते थे, जो माता-पिता की राय के विरुद्ध विवाह करना चाहते

थे । तब विवाहित स्त्री का किसी अन्य पुरुष से प्रेम करना बड़ी अनहोनी सी बात थी । यह समस्या स्वतन्त्र मेल-जोल से ही बढ़ी है, जो पहले बहुत कम थी । बीस वर्ष पहले प्रेम-विवाह हुआ करते थे । निशा के रिश्ते में एक भाई हैं, उनका भी प्रेम-विवाह ही हुआ था, परन्तु तब की और अब की बात में अन्तर है । समाज की मान्यताएं तब और थीं, अब और हैं ।

निशा सोचती और सोचती रह जाती । इधर उसके पति का स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं रहता था । उसने एक दिन किशोर से कहा...चलिये पहाड़ पर हो आयें । किशोर पत्नी के अनुरोध भरे स्वर से ही समझ गया कि वह तय कर चुकी है, पहाड़ पर जाकर ही मानेगी ।

निशा का मन कहता था, वह पहाड़ पर जाएगी, तो राजा को भूल जायेगी । नहीं, भूल जाना कहना तो अतिशयोक्ति होगी, राजा का जादू उस पर से कम हो जायेगा । पहाड़ों से शुरू से ही निशा को लगाव है । पहाड़ पर जाकर वह स्वस्थ मन से इस विषय पर सोचेगी । एक बार उसे विचार आया, यह पलायन है । चलो पलायन ही सही । वह झुकेगी नहीं ।

मसूरी में किशोर और निशा बच्चों सहित एक होटल में ठहरे । वहाँ बहुत से और लोग भी थे । किशोर ने पत्नी की मनोव्यस्तता से तंग आ एक युवक से मित्रता जोड़ी । वह युवक, प्रबोध सदैव उनके साथ रहता । निशा ने किशोर से कहा भी, 'इसे क्या साथ-साथ लिये फिरते हो ।' किशोर ने केवल यह उत्तर दिया...'तुम आजकल न जाने कौन सी कल्पना लेकर खो गई हो । तीसरे व्यक्ति के पास होने से तुम्हारा ध्यान बंटा

रहता है और तुम केवल अपने मन की कल्पनाओं में ही नहीं रहतीं, धरती पर भी थोड़ी देर के लिये उतर आती हो। धरती पर आने से ही मेरे अस्तित्व का तुम्हें अनुभव होता है।'

निशा सोचती...राजा का आकर्षण भूल पाना उसके वश की बात नहीं। आज के युग में जब नारी पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा भिड़ाकर काम करने लगी है, तो ऐसा आकर्षण स्वाभाविक है, चाहे वह मर्यादा के बन्धनों से बंधा हो।

प्रबोध, दो चार दिन के सहवास से निशा की ओर खिंचता गया। वह हर बात में निशा की तारीफ करता, खाने के समय, सैर के समय। एक दिन प्रबोध, किशोर और निशा कैम्टी वाटर-फाल देखने गये। निशा बहुत थक गई थी। वह फ़ाल के पास पहुंच पत्थर पर बैठ गई। किशोर और प्रबोध स्नान करने लगे। निशा ने प्रकृति के सौन्दर्य में मन लगाना चाहा। स्नान करते करते प्रबोध उसके पास आ गया। पानी का छींटा निशा पर मारता हुआ बोला...''तुम मुझे बहुत अच्छी लगती हो, निशा।''

''किशोर को देखा है प्रबोध, वह तुम्हारा मित्र है। मैं अभी उसे कह देना चाहती हूं जो तुमने मुझ से कहा है।''

प्रबोध का मुख लाल हो उठा। ''मैं तुम्हें शिक्षित महिला समझता था निशा, तुम वैसी की वैसी निकली---अशिक्षित और गंवार।''

''हां, तुम जैसा चाहो कह सकते हो। मैं कुछ न कहूंगी।''

"देखो, देह्ली जाकर भी मैं तुम लोगों से खूब मिला करूंगा।"

"अवश्य मिलना," निशा ने सभ्यता-वश कहा, फिर चुप हो गई।

किशोर ने स्नान करने के बाद चाय आदि माँगी। निशा होटल से सब कुछ लेकर चली थी। प्रबोध फिर निशा की प्रशंसा करने लगा।

निशा ने ज़रा क्रोध से किशोर को देखा—"सुना तुमने ?"

किशोर हंस दियः, बोला—"सच कह रहा है प्रबोध।"

निशा का ध्यान फिर एक बार राजा की ओर गया। न जाने वह इस समय क्या कर रहा होगा। निशा को अपने पर झुंझलाहट भी हुई। वह क्यों इतना सब सोचती है ? राजा तो शायद इतना न सोचता होगा। राजा ही तो शुरू-शुरू में उसके पास आकर बैठता था। वह अपना काम कर लेती। दोपहर का खाना लेकर वह निशा की मेज़ पर ही आ जाता। दोनों साथ-साथ खाते। बहुत से विषयों पर बातचीत होती। धीरे-धीरे परिचय बढ़ने लगा। एक दिन निशा को एक अन्य सहकारी ने बतलाया राजा विवाहित है, पत्नी साथ नहीं रखता, किसी कारण उनकी आपस में नहीं पट सकी।

निशा ने सुना तो उसके मन में राजा के लिये ढेरों सहानुभूति जाग उठी। उसे एकाएक विचार आया, तभी राजा जीवन के प्रति इतना कटु है। उसकी कोई बात ऐसी नहीं होती जिसमें कटुता का पुट न हो।

निशा उस कटुता को न देख, उसकी हंसी की ओर ध्यान देती—ऐसी हंसी जिसकी गूंज से दीवारें भी हंसने लगती। उन्मुक्त

हंसी...जिसे कभी-कभी हंसी न कह कर अट्टहास का रूप दिया जा सकता है। निशा के विचार में अट्टहास उस चिरपीड़ा पर एक सामाजिक आवरण है जिसे व्यक्ति अपने परिचितों से छिपाकर रखना चाहता है। ऐसा निशा ने राजा से कहा था। वह मुस्करा दिया था, ऐसी मुस्कराहट जिस पर निशा अपनी सौ इच्छाएं न्योछावर कर सकती है।

उस दिन आकाश बादलों से घिरा था। उन्मादी बादल, जिन्हें देख मोर नाचता है और कोयल कूकती है, विरहरा रोती है, किसान सौभाग्य पर मुस्कराता है।

निशा का मन काम काज में नहीं लग रहा था। वह इसी प्रतीक्षा में थी, राजा का काम कब समाप्त हो और वह आये। दोपहर हुई...राजा खाना खाने के समय उसकी मेज पर आया।

"आज बादलों से आकाश घिरा है।"

"हां वह तो मैं भी देख रहा हूं।"

"क्या बादल आपको अच्छे नहीं लगते।"

"नहीं, मैं अकेला हूं।"

राजा ने केवल इतना ही कहा था। निशा का मन राजा का हो गया।

अभी और न जाने कितनी छोटी-छोटी घटनाओं को निशा सोचती जाती। वह घटनायें मधुर स्मृति बन, निशा के मन से बंधी हैं।

किशोर ने होटल लौट चलने का प्रस्ताव किया। वह निशा की विचित्रता पर हैरान हो रहा था। यह कैसी हो

गई है ? इसे बच्चों से बिल्कुल मोह नहीं रहा। दिन भर से अकेले छोड़े हैं। किशोर पत्नी की इस उपेक्षा से चिढ़ गया। होटल लौटते ही उसने कहा..."हम लोग कल पहली मोटर से वापिस चलेंगे।"

निशा ने भी सोचा, ठीक है, यहाँ समय बहुत होता है। सोचते-सोचते, उसका मन भी भटकता है, किशोर को भी कोई काम नहीं। यदि वह व्यस्त रहे, तो निशा के मानसिक उतार-चढ़ाव की ओर उसका ध्यान कम जाता है। किशोर ने भी नहीं पूछा...तुम, आजकल किस विचार को लेकर व्यस्त रहती हो।

देहली लौट कर निशा ने पुन: अपने काम में मन लगाया। घर पर भी वह पड़ोस के दो बच्चों को मैट्रिक की परीक्षा की तैयारी करवाने लगी। राजा भी एक मास की छुट्टी अपने गांव गया। वह वहां से अपने सहकारी प्रदीप को पत्र लिखता रहता। निशा को भी उसके पत्र में नमस्कार और पत्र लिखने का अनुरोध करता रहा। निशा शीघ्रग्राही थी। उसे राजा के व्यवहार से चोट लगी।

निशा सोचती, पुरुष को जब यह अनुभव हो जाता है कि इस नारी पर मैंने विजय पा ली है, तो वह शायद नई की खोज में जाता है।

निशा ने प्रयत्न आरम्भ कर दिया...वह राजा से मेल-जोल कम कर देगी। उसका अपना पति है, बच्चे हैं, भरापुरा परिवार है। उसे क्या पड़ी है राजा का विचार करे और राजा

को अपनी मानसिक तथा पारिवारिक शान्ति भंग करने दे।

उर्मिला निशा की अतीव प्रिय सखी है। दोनों बचपन से दूसरे को जानती हैं। उर्मिला ने विवाह किया था, परन्तु चार वर्ष बाद पति को छोड़ दिया था, क्योंकि वह एक अन्य पुरुष को पसन्द करने लगी थी। वही उर्मिला जो कालेज में गान्धी जी की फ़िलासफी तथा संयम की बातें करती, उसके मुख पर ओज का दीप जगमगाया करता था, वह अपने वर्तमान जीवन से इतनी श्रीहीन हो गई थी, वह कान्ति दीप बुझ गया था, केवल कालिख रह गई थी, जहाँ तहाँ उसकी आँखों के नीचे। निशा उसे देखती तो दुःख होता। परन्तु यह सब नई सभ्यता की देन है।

उर्मिला से एक बार निशा ने पूछा था—"यह आजकल ऐसा क्यों हो रहा है कि पत्नी एक पति से या पति एक पत्नी से पूर्ण सन्तुष्ट नहीं रहते, विशेषकर इन बड़े-बड़े शहरों में, देहली में, बम्बई, मद्रास में।"

उर्मिला बोली थी—"कलकत्ता कौन कम है?"

"हां, मेरा मतलब सभी बड़े शहरों से है।"

"शायद अब पति पत्नी को केवल बच्चे पैदा करने की मशीन नहीं समझता। और पत्नी भी एक पति में पूर्ण पति के गुण नहीं देख पाती। उसकी कल्पना के नायक से वह कुछ कम होता है।"

निशा को यह बात अच्छी नहीं लगी थी। उसका मन घृणा से भर उठा था। वह कभी बहुपति की बात सोच भी नहीं सकती। उसकी समस्या तो केवल यही थी कि वह राजा को मित्र मानने लगी है।

निशा, अमेरिका की बात सोचती जहां पल-पल में तलाक होते हैं। छीः, वह कभी किशोर को तलाक नहीं दे सकती, बच्चों को छोड़ नहीं सकती, सामाजिक मर्यादा की कड़ियां तोड़ने का साहस उसमें नहीं।

राजा छुट्टी से लौटा, तो दो तीन ही दिन में उसने निशा को अपनी ओर कर लिया। निशा फिर उधर झुकने लगी। उसके निश्चय धरे रह गए।

श्री चतुर्वेदी निशा के अफसर थे। वह भी चाहते थे निशा उनके कमरे में अधिक से अधिक आया करे। वह राजा से जलने लगे। उनके कान में भी यह खबर पहुंची कि निशा और राजा में मैत्री बढ़ती जा रही है। उन्होंने एक दिन पूछ ही तो लिया—"क्यों निशा, तुम विवाहित स्त्री हो, फिर राजा से तुम्हारी इतनी घनिष्ठता। तुम्हारे पति को बतलाना पड़ेगा।"

निशा को पुरुष की इस मनोवृत्ति पर खीझ हुई। मैं इनसे अधिक मिलती बोलती नहीं, इस लिए यह ऐसा आचरण कर रहे हैं। निशा ने भी निधड़क होकर उत्तर दिया—"मैं कोई बात पति से छुपा कर नहीं करती। राजा मेरे घर कई बार जा चुके हैं। परन्तु एक बात मेरी समझ में नहीं आई। जहां दो साथ काम करने वाले पुरुषों में पारस्परिक समझौता हो सकता है, वहाँ एक पुरुष और नारी में ज़रा सी मित्रता हो जाये तो आप लोग अनुचित समझते हैं।"

चतुर्वेदी जी बड़े मंजे हुए खिलाड़ी थे। वह भला मौका क्यों जाने देते, तुरन्त बोले "पुरुष-पुरुष की बात, पुरुष नारी

की बात से भिन्न है। जहाँ पुरुष-पुरुष में बौद्धिक सम-झौता होता है वहाँ पुरुष नारी में हृदय का सौदा होता है।"

निशा का मुख लाल हो उठा, बोली–"आप मेरा अपमान कर रहे हैं।"

चतुर्वेदी जी को नौकरी भी प्यारी थी, निशा की उद्दंडता तथा निर्भीकता से पूर्ण परिचित थे। कहीं जाकर किसी अफसर से कह देगी तो विचारों की आबरू मिट्टी में मिल जाएगी।

निशा उस दिन क्रोध से तिलमिला रही थी। कमरे में आते ही उसने राजा से कहा—"आप किसी दूसरे कमरे में क्यों नहीं बैठते ? सुपरिटेंडेंट भी तो आप से कह रहा था कि आप उसके कमरे में चले जायें।"

राजा के मुख पर मुस्कराहट फैल गई, "बस, डर गई ? इतने से ही।"

"नहीं डरी नहीं..मुझे लोक लाज का भी ख्याल है।"

"दूसरे कमरे में बैठने से, क्या मैं दिल से भी दूर हो जाऊंगा ?"

"शायद।" अविश्वास से निशा ने राजा की आंखों में देखते हुए कहा।

"मैं कल ही कमरा बदल लूंगा यदि उससे समस्या सुलझ जाये।"

यह कह राजा निशा के पास से उठ कर अपनी सीट पर चला गया। निशा सोचती रह गई अपनी बात, समाज की बात, चतुर्वेदी की बात, स्वार्थ की और बदलती हुई गति की बात, नयी चाल की, व्यक्तिगत समस्या की।

———

भगवान् जल गया

भगवान् जल गया

पूर्व में सूर्य की लाली से नहीं वरन् उत्तर में मन्दिर के जलने से आकाश लाल हो उठा था। लपटें उड-उड़ कर, पास के वर्षों पुराने पीपल के पेड़ को छू रही थीं। मन्दिर के वाहर बहुत सी भीड़ जमा हो रही थी। लोग तरह-तरह की वातें कर रहे थे। गांव के इतिहास में यह पहली घटना थी। गाँव वालों ने न कभी ऐसा सुना था, न जाना था। लेखराज को एक दो आदमियों ने पकड़ रखा था। वह रह रह कर अपने को छुड़ाने का प्रयत्न करता, परन्तु उसका कमजोर क्षीण शरीर उसी तरह विवश होकर रह जाता, जैसे पिंजरे में बन्द जानवर लोहे की जाली से टकराकर, फिर पीछे हो जाता है।

"मुझे छोड़ दो, मैं इस पापी का खून कर दूंगा, मैं इसका गला घोट दूंगा।"

भीड़ में एक आवाज़ उठी—"पुजारी पापी नहीं है, तुम पापी हो, वाहे गुरु, वाहे गुरु, सतनाम।"

"सब इस पुजारी की बदमाशी है"—पीपल के नीचे से किसी युवक ने कहा।

एक बुढ़िया लाठी टेकती हुई सब गाँव वालों को शान्त करने लगी।

"नहीं, कलयुग है, भगवान् की मूर्त्ति से आग की लपटें निकल रही हैं। ऐसा कभी किसी ने देखा है, ऐसा कभी किसी ने सुना है ? आज कल जो हो, वही कम है।"

"सब इस पुजारी की बदमाशी है।"

"नहीं, उस चुड़ेल चम्पो ने मन्दिर को भ्रष्ट कर दिया।"

भंगियों की एक टोली किसी कोने से बोली, "नहीं, चम्पो मीरा से कम नहीं थी, उसे भगवान् ने शरण दी"।

"अधिक बात न करो, मीरा को बदनाम न करो। ऐसी बात ज़बान से निकाली तो ज़बान खींच लूंगा।"

बीसियों आदमी एक साथ बोल रहे थे, किसी को कुछ सुनाई ही नहीं देता था।

लेखराज पुनः चिल्ला उठा......उसकी आवाज़ में दीवारों में छेद करने वाला क्रन्दन था। भीड़ में सभी तरह के लोग थे, पंडित, भंगी और किसान। चम्पो की मृत्यु का बदला वह अवश्य लेंगे। भगवान् खुद भी लेंगे। नहीं, वह स्वयं तो ले रहे थे। पत्थर की मूर्ति जल रही थी, भगवान् गाँव भर से रूठ गये थे। काठ की मूर्ति नहीं, पत्थर की मूर्ति से लपटें निकल रही थीं। ऐसा कभी हुआ था ?

लेखराज के बच्चे माँ को पुकार रहे थे। पहली बार

जीवन में उसने भी अनुभव किया, कि वह दोषी है । चम्पो की मृत्यु में उस का भी हाथ है । चम्पो ऐसे ही मरने वालों में से न थी, यह सब लेखराज के पापों का फल है । सिवाय पुजारी राधेमल के......या शायद भगवान् के, जो अपना रोष प्रकट कर रहे थे, जल रहे थे, कोई नहीं जानता था कि चम्पो की मृत्यु क्यों हुई, कैसे हुई । छोटा पुजारी चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा था . 'लेखराज शराबी है, चम्पो ने आत्महत्या कर ली है । लेखराज के अत्याचारों से तंग थी ।'

गांव के एक बूढ़े बाबा ने आगे बढ़कर कहा—"चम्पो ने आत्महत्या कर ली है तो पुजारी को कांपने की क्या आवश्यकता है । भगवान् शाप दे रहे हैं, पुजारी को नहीं चम्पो को । गांव वालों को ।"

लेखराज के दादा-परदादा भंगी रहे होंगे । परन्तु उसके पिता तरखानी का पेशा करते थे, उन्होंने एक आरा मोल रखा था । लेखराज ने भी आरे का काम ही किया । उस इलाके में सिख तरखान ही अधिकतर थे । लेखराज के पिता को मरे भी दस वर्ष होने को आये थे । उसने पिता के समय से ही आरे पर काम करना शुरू कर दिया था । परन्तु फिर भी तरखान पेशा के लोग उसे अच्छा न समझते थे । उनकी आँखों में सदैव लेखराज खटकता था । लेखराज के घर का दूसरे तरखान पानी भी न पीते थे । उनके शादी-ब्याह में उसे न्यौता मिलता था, परन्तु सब से हट कर अलग बैठाया जाता था ।

लेखराज और भी गाँव वालों की आंख की किरकरी बन गया, जब वह चम्पो को ब्याह कर लाया । गठा हुआ शरीर,

मंझोला कद, दो बड़ी-बड़ी प्रश्न भरी कजरारी आँखें और सुन्दर ढली हुई नाक, नमकीन सांवला रंग, पतले नोकदार ओंठ और उन पर निमन्त्रण देता हुआ एक बड़ा सा तिल। दूसरे तरखानों को उसी दिन लेखराज से चिढ़ हो गई। वह मन ही मन उससे जलने लगे। छः वर्ष बीत गये। प्रत्येक वर्ष चम्पो गर्भवती होती और एक सुन्दर स्वस्थ बच्चे को जन्म देती। वह तीन नटखट लड़के और एक गुड़िया सी लड़की की माँ बन चुकी थी। बच्चे जनने से चम्पो के सौन्दर्य में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई थी। वह वैसी ही सुन्दर थी, जैसी लेखराज ब्याह कर लाया था। गांव वाले अभी भी जलते थे।

लेखराज तीन चार रुपये रोज कमा कर लाता, चम्पो बड़ी जुगत से खर्च करती और कुछ न कुछ बचा लेती। गांव के कई ऐसे बढ़े चढ़े लोग भी थे जिन्हें लेखराज की उन्नति देख बड़ी जलन होती। लेखराज के बच्चे और पत्नी किसी ऊंची ज़ात वालों के परिवार वालों से कम न थे।

धीरे-धीरे लेखराज ने एक गाय मोल ले ली। जिस दिन गाय उसके घर आई, अन्य पेशावर तरखानों के हृदय पर सांप लोट गया। उन्होंने तय किया इसका नाश किसी न किसी प्रकार करना होगा। आखिर उनकी सभा हुई और उनके योजना शील दिमाग में यह बात आ ही गई। धीरे-धीरे गाँव के गुंडे मेहर की मित्रता लेखराज से बढ़ने लगी। वह उसे सुरादेवी की आराधना सिखलाने लगा।

पहले लेखराज काम से सीधा घर आ जाता था, शरबत पानी पीकर सुस्ता लेता। अपनी पूरी कमाई पत्नी चम्पो के

हाथ पर रखता था। अब वह रात बीते लौटता, शराब के नशे में चूर। चम्पा कुछ पूछती, तो वह उसे पीटने लगता, गालियां बकता। चम्पा आकाश की ओर देखती, वहां कोई परिवर्तन नहीं था। नीले आकाश में तारे उसी तरह खिले थे, जैसे पहले खिलते थे। हवायें भी उसी तरह चलती थीं। पूरा गांव वैसे ही बस रहा था। खेत लहलहा रहे थे। कोल्हू के चलने की गूंज भी अभी तक उसी तरह ही आती जैसे पहले आती थी। केवल परिवर्तन था तो लेखराज के व्यवहार में।

लेखराज कभी काम पर जाता कभी न जाता। धीरे धीरे उसके ग्राहक घटने लगे। काम कम मिलने लगा, शराब की आवश्यकता बढ़ने लगी। यदि चम्पा कुछ कहती तो लेख-राज डांट देता, मौका पाकर वह उसे पीटने भी लगा था। चम्पा के जीवन में यह जो तूफान आया, इसने उसकी शक्ति को चूर कर दिया। उसके वश में नहीं था कि वह इसका कोई उपाय करती।

चम्पा के नटखट लड़के अब चुप करके दुबक के रसोई के एक कोने में बैठा करते। पिता को देख कर रसोई घर में छिप जाते। मां की गोद में मुँह छिपाने के लिये उसका आँचल घसीटते। चम्पा अपनी कजरारी आँखों से, जिनका तेज बहुत कम हो गया था, आंसू बहाती रहती। ऐसा भी समय था जब लोग उससे ईर्ष्या करते थे, अब वह अपनी सखी सहेलियों से मुंह चुराती।

गांव के सुनार से दूसरे तीसरे महीने चम्पा कुछ बनवाती

रहती थी। अब वह आठवें दसवें दिन कुछ न कुछ बेचती रहती। नहीं तो घर का खर्च कैसे चलता ? वह अब दूसरों के खेतों में मजदूरी भी करने लगी थी। मजदूरी से भी जो पैसे लेती, वह भी लेखराज अब शराब पीने के लिये ले लेता...कभी छीन लेता। यदि चम्पा मना कर देती तो वह उसे मारता।

लेखराज की अवस्था दिन पर दिन बिगड़ती गई। वह शराब में चूर कई कई दिन तक घर नहीं आता था। एक-एक करके चम्पा के सब गहने बिक गए।

चम्पा का सलोना शरीर मुरझाता जा रहा था। मुख की श्री और कान्ति समाप्त हो चुकी थी। वह बच्चों पर बरसती और अपना सारा क्रोध उन्हीं पर निकालती। बच्चे अब उससे डरने लगे थे।

एक दिन लेखराज ने एक बच्चे की सौगन्ध खाई, वह अब कभी शराब नहीं पीयेगा। आरा बिक गया था, तो क्या ! वह कुल्हाड़ी से लकड़ी काटेगा। चम्पा को लगा जैसे वर्षा की हल्की सी फुहार पड़ी हो, जैसे बादलों से घिरा आकाश निखर आया हो।

उसने जाले से भरी छत को देखा। न जाने इधर वह आलसी क्यों होती जा रही है, उसने अपने घर के जाले क्यों नहीं उतारे ? धुएं से सारी छत काली हो रही थी। चम्पा की निराश आंखों में आँसू आ गये, फटी मैली धोती के छोर से उसने आंखें पोंछ लीं। वह भागी भागी मन्दिर के द्वार तक गई, बाहर से ही उसने भगवान् को प्रणाम किया। आशीर्वाद मांगा, उसके पति को सुबुद्धि मिले।

दिवाली को केवल पन्द्रह दिन रह गये थे। चम्पा दुगने उत्साह से खेत में काम करती। रात्रि को दीपक जला कर सफेद मिट्टी से घर को लीपती। रात को फटे हुए कपड़े सीती, मरम्मत करती। पुराने कपड़ों को जोड़ कर नये का रूप देती। चम्पा को मजदूरी अच्छी मिल जाती, क्योंकि उनके गांव को शहर से सड़क द्वारा मिलाया जा रहा था।

बड़े ध्यान से चम्पा ने आठ आने, चार आने, एक रुपया करके दस रुपये जमा किये। वह इस बार बच्चों को अच्छी अच्छी मिठाइयां खिलायेगी, दूध पिलायेगी। चाहे पति ने वादा किया था पर वह उस पर विश्वास नहीं कर सकी। उसने एक मिट्टी के बर्तन में यह दस रुपये के आने-दुअन्नियां सम्भाल कर रख दीं। चम्पा को पति पर अविश्वास था। अपने कपड़ों की पोटली में बांध कर रुपये रखेगी, तो वह अवश्य निकाल ले जाएगा। इस बार उसने बच्चों को मिठाई के लिये वादा दे दिया था।

एक ने जलेबियों की फ़रमायश की थी, दूसरे ने लड्डुओं की, लड़की और छोटे लड़के को बर्फी बहुत पसन्द थी।

लेखराज भी इधर मेहर के चंगुल से निकल कर कुछ मजदूरी करने लगा था। दिन को जितनी मजदूरी करता, रात को वह चोरी-चोरी शराब पी डालता। दिवाली से दो दिन पहले मेहर ने लेखराज को तंग करना शुरू किया। वह उसे समझाता रहा—वर्ष भर तो जुआ खेला अब दिवाली पर जब मौका आया है खेलने का, तो वह तैयार नहीं। लेख-राज के पापी मन को तिनके का सहारा चाहिये था। उसके

अपने मन का भी कोई स्थल तैयार था कि वह जुआ खेले।

उस दिन सारा दिन लेखराज प्रतीक्षा करता रहा। काम पर भी नहीं गया। चम्पा सड़क पर मजदूरी करने गई तो उसने पीछे से सारा घर छान डाला। बड़े लड़के ने मां को रुपये सम्भालते देख लिया था। लेखराज ने बड़े दिलासे से कहा—"मैं तुम लोगों के लिये कपड़े खरीद लाता हूं, मुझे बतलाओ तुम्हारी मां रुपये कहां रख गई है ?"

बच्चे बहुत बुरी तरह से लेखराज से डरते थे। उसे देख उन पर आंतक छा जाता। वह भयभीत हो उठते। बड़े लड़के को लगा बापू मुझे मार डालेगा। सच बोलने में क्या दोष है। उसने टूटी-सी मिट्टी की हंडिया एक कोने में से निकाली। लेखराज के मन में क्षण भर के लिये दुविधा भी नहीं हुई। वह उठा और रुपयों पर झपटा। उसने एक बार बच्चों की ओर देखा, फिर उसी तरह भागा जैसे गाय रस्सा छुड़ा कर भागती है।

उस रात चम्पा देर से घर लौटी। अपनी उस दिन की कमाई में से आटा पिसवा कर लेती आई। रोज़ रात को सोने से पहले वह हंडिया में एक बार रुपये गिन लिया करती थी। आज उसने ऐसा नहीं किया। जल्दी जल्दी बच्चों को खाना देकर खाट पर लेट गई। एक बार उसे ख्याल आया लेखराज घर पर नहीं। दूसरे ही क्षण यह ख्याल जाता रहा क्योंकि लेखराज तो कभी घर पर होता नहीं। कल त्यौहार है।

चम्पा की आंखों के सामने अपने ब्याह की पहली दिवाली गुजर गई। तब लेखराज ने नया जोड़ा ही नहीं बनवा कर दिया था, बल्कि नये कंगन भी लेकर दिये थे। चांदी के सोलह

तोले के कंगन जिन्हें बेचकर रुपये उसने लेखराज को दे दिए थे।

दूसरे दिन सुबह उठते ही बच्चों ने चम्पा को घेर लिया। "मां मुझे बर्फी चाहिये, मां मुझे लड्डू चाहियें।"

चम्पा के मन में स्फूर्ति थी, चलो अच्छा हुआ उसने कुछ पैसे तो बचा रखे हैं। आज का दिन तो अच्छा निकल जायेगा। जल्दी से हाथ मुंह धोकर चम्पा ने हाँडी टटोली, पैसे नहीं थे, हांडी का मुंह खुला पड़ा था। चम्पा के पांव के नीचे से धरती खिसक गई, आंखों के सामने अन्धेरा छा गया। हृदय में एक हूक सी उठी और तीर सा लगा। चम्पा धरती पर बैठ गई।

"माँ क्या हुआ ?"

चम्पा चुप रही।

"मां बर्फी चाहिये।"

"रुपये किसने चुराये हैं ?"

बड़े लड़के ने आंख मलते हुए कहा—"बापू ने चुराये हैं।"

चम्पा की आँखों में खून उतर आया, उसने दोनों हाथों से तीनों बच्चों को पीटना शुरू कर दिया। पड़ोसिन ने आकर कहा—"आज क्यों मार रही हो, सुबह सुबह, त्यौहार का दिन, बहलाओ खिलाओ। तुम मां हो, डायन हो ?

पड़ोसिन अपनी ओर से आदेश दे कर चली गई। चम्पा ने दर्द भरी दृष्टि से आकाश की ओर देखा। आकाश स्वच्छ था—नीला नीला और श्वेत। वायु में जरा सी ठंडक थी। चम्पा ने बच्चों को मारा तो जरूर परन्तु उसका हृदय हाहाकार कर उठा। सचमुच में वह मां नहीं डायन है। चम्पा का मन भर उठा। उसने चूल्हा भी नहीं जलाया। पड़ोसिन

ने थोड़ीसी रोटी और चाय बच्चों को लाकर दे दी। चम्पा भूखे पेट रही। दिन भर हलवाई मिठाइयां बनाते रहे। पड़ोस में बच्चे, पटाखे छोड़ते रहे, चम्पा के कान में वह बम से भी अधिक छेद करते रहे। उसका हृदय रो देता। वह समझी नहीं क्या करे, क्या न करे।

लेखराज घर नहीं आया। वह अवश्य ही कहीं शराब पीकर पड़ा होगा। सब पति अपने घर थे, सब पिता अपने बच्चों को दुलार रहे होंगे। केवल लेखराज ही ऐसा पति और पिता है, जो घर से दूर है, बच्चों से दूर है।

चम्पा के बच्चे दिन भर पड़ौसियों के बच्चों का पटाखा चलाना सुनते रहे। बीच-बीच में मां को आकर तंग कर जाते, चम्पा उन्हें खाने को दौड़ती। उसका इससे बड़ा अपमान क्या हो सकता है। खून पसीने से कमाया हुआ थोड़ासा धन... कौड़ी-कौड़ी पति ले गया। अपने जिगर के टुकड़ों से छीन कर ले गया।

संध्या होते ही बच्चे घर आ गये।

"मां···तू इतने दिन मिठाई का वादा करती रही है। मिठाई कहां गई ?"

"मां...बाहर दीप जल रहे हैं।"

"माँ तुम उत्तर क्यों नहीं देतीं।"

चम्पा क्या उत्तर देती। काश! उसे पता होता कि लेखराज ऐसा करेगा। वह पन्द्रह दिन पहले ही मिठाई लाकर घर में रख लेती। बासी ही बच्चों को खिला देती।

पैसा इतना महत्वपूर्ण है! जीवन के हर सवाल का

जवाब पैसा है। पैसे के बिना कुछ नहीं हो सकता। चम्पा की आंखों में अविरल आँसुओं की धारा बहने लगी। मंदिर में आरती हो रही थी। घंटा बजने का स्वर चम्पा के घर तक भी आ रहा था। वह एकाएक उठी, भगवान् के घर में आरती हो रही है। मनों चढ़ावा चढ़ा होगा। प्रसाद यह भी ले आवे। प्रसाद पाकर ही बच्चों को झूठला सकेगी।

मंदिर को विशेष रूप से सजाया गया था। दीपों से जगमगा रहा था। गाँव के सब समर्थ व्यक्ति चढ़ावा चढ़ाने आये थे। चम्पा भी मंदिर की सीढ़ियों के पास हाथ जोड़ कर खड़ी हो गई। आरती समाप्त हो गई, चरणामृत बंट गया, प्रसाद बंटने लगा। चम्पा दुबक कर कोने में घंटा भर खड़ी रही। पुजारी राधेमल ने देखा भीड़ छंट गई है, तो वह भी मंदिर के भीतर चले आए।

चम्पा साहस करके आगे बढ़ी, "दिवाली मुबारिक पंडित जी, ज़रा सा प्रसाद मुझ गरीब को भी दे दीजिये।"

पंडित जी की भंवें चढ़ गईं। इस भंगिन का इतनी मजाल! जब नवेली थी, सुन्दर थी, पुजारी राधेमल ने इसे कहा था, पांच रुपया महीना और रोटी दूंगा, मंदिर पर झाड़ू लगा जाया कर। तब ऐंठ दिखलाती थी। दस आदमियों के सामने अंगूठा दिखला कर चली गई थी। आज पण्डित जी भी बदला ले सकते हैं। आखिर भंगिन ठहरी।

पुजारी राधेमल ने देखा, चम्पा का चम्पक सा रंग काला पड़ गया था। वह कजरारी आँखें भीतर धंस गई थीं। कपड़े फटे हुए थे। बाल रूखे और बिखरे हुए। पंडित राधेमल का

मन घृणा से भर उठा। तो यह है चम्पा उस शराबी लेखराज की पत्नी।

"तू कहां आ गई है इस समय शुभ मुहूर्त में ? लक्ष्मीपूजा समाप्त हुई। तू प्रसाद मांगने कैसे आई है ?"

"बड़ा उपकार होगा महाराज। प्रसाद दे दीजिये। मेरे बच्चे भूखों मर रहे हैं।"

"तो यह कोई अनाथालय नहीं। चल, दूर हट, भगवान् के घर में तेरा घमंड चूर चूर हो रहा है।"

चम्पा ने बड़ी विनती की परन्तु उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। अन्त में वह निराश होकर घर लौट गई। एक दीपक उसकी पड़ोसिन उसके घर के सामने रख गई थी। चम्पा सोते हुए बच्चों के पास धरती पर बैठ गई। दिवाली की रात को भी बच्चे भूखे सो गये ! ओफ ! चम्पा का इतना परिश्रम व्यर्थ गया ? जंगल से लकड़ी चुनना, खेत में दूसरों की फसल की कटाई करना, सड़क पर पत्थर तोड़ कर अपना हाथ खून से रंग लेना।

दिन भर चम्पा सुस्ताती रही थी। इस समय मानो उसकी आँखों से कोई नींद छीन कर ले गया था। उसकी आँखें खुली थीं। उसका एक मन हुआ, किसी शराब की दूकान में पड़े लेखराज को कान पकड़ कर खेंच लाये।

धीरे धीरे गांव निद्रा देवी की गोद में सो गया। चम्पा अपने भूत, भविष्य पर सोचती रही। उसका मन रह रह कर कहता, वह भी मानव है। एक बार गांव में कोई बूढ़े नेता लेक्चर देने आये थे, उन्होंने भी कहा था—हर एक व्यक्ति को जीने का अधिकार है। चम्पा को भी। उसके बच्चों को भी।

भगवान् की मूर्ति के आगे इतना चढ़ावा चढ़ा है। सारा पुजारी के घर जायेगा। ओफ़ ! यह कैसा अन्याय है। चम्पा इस पाप को समाप्त कर देगी। वह अपने बच्चों के लिये ज़रूर मिठाई लायेगी।

चम्पा की टांगों में न जाने कहां से शक्ति आ गई। वह भागी और मंदिर की सीढ़ियों पर पहुंच उसने साँस लिया। उस समय रात्रि का चौथा पहर था। कोई भी व्यक्ति मंदिर के आसपास न था। चम्पा निधड़क मन्दिर के भीतर चली गई। उसके मन की साध थी दूसरे लोगों की तरह वह भी भगवान् के चरणों में प्रणाम करे। उसने वैसा ही किया, फिर जल्दी से एक थाली खाली करके उसमें सब तरह की थोड़ी थोड़ी मिठाई भर ली। फुर्ती से उसके हाथ चलने लगे। दिन भर की भूखी प्यासी थी। फिर भी आज न जाने कैसे शक्ति उसके हाथों में थी।

दो तीन दीप उठा कर चम्पा ने थाली में रख लिये। फिर थाली उठाकर कांपती टांगों से चलने लगी, तो पानी के एक लोटे से टकराई। लोटा आवाज करता हुआ पक्के फर्श पर गिर पड़ा। पुजारी राधेमल न जाने कहां से आ गया।

"कौन !! तू !! तेरी इतनी मजाल ?' शराबी कीपत्नी, चोर ! भंगिन ! अभागी तू मन्दिर में कैसे आई।"

राधेमल ने धक्का दिया। चम्पा के हाथ से थाली झनझना कर दूर गिर गई। एक दीप भगवान् की मूर्ति पर गिरा। चम्पा धक्का न सहार सकी, वह भगवान् के चरणों में गिर पड़ी।

भगवान् जाने मानसिक आघात से वह मर गई या अचेत हो गई।

एकाएक भगवान् की मूर्त्ति में से आग की ज्वाला प्रज्वलित हो उठी। राधेमल स्तब्ध वहां खड़ा था। खड़ा रह गया। वह चम्पा को भी बाहर न ला सका।

छोटा पुजारी जाग आया। धीरे-धीरे पौ फटने लगी और मंदिर में भीड़ जमा होने लगी। राधेमल वहां खड़ा था।

गाँव वाले उस पर लांच्छन लगा रहे थे। भगवान् जल रहे थे। चम्पा जल रही थी। मन्दिर जल रहा था। मानव मूक खड़ा था...अपनी निष्ठुरता का दंड उसे इससे अधिक क्या मिलता।

मन की आँखें

मन की आंखें

किशोर की मां ने सपूत को उसी समय कपूत करार दिया था जब वह एक बंगालिन लड़की मालविका को कागजी तौर पर बहू बना कर घर आया था। मां की सब आशाओं पर तुषारपात हो गया। किशोर घोड़ी चढ़ेगा, घर में चहल-पहल होगी, स्त्रियां सोहाग गायेंगी, द्वार पर शहनाई बजेगी, चार सम्बन्धी इकट्ठे होंगे, किशोर की माँ कामदार गुलाबी साढ़ी के ऊपर बनारसी दुपट्टा ओढ़ेगी। लड़का तो हाथ से निकल गया था, उसने माँ के स्वप्नों का विचार न करके कचहरी में ब्याह कर लिया।

अधेड़ मां की समझ में यह न आया कि लड़का कचहरी में कैसे विवाह कर आया। वह स्वयं भी मैट्रिक तक पढ़ी हैं। उनका विवाह आज से पच्चीस वर्ष पहले हुआ था, तब उन की आयु पन्द्रह वर्ष की थी। अपनी आयु की स्त्रियों में वह पिछड़ी हुई तो नहीं है, भगवान् की कृपा से उनका शरीर

सौष्ठव भी बना है। बातचीत करने में निपुण हैं। अपनी तीनों बेटियों को भी वह पढ़ा रही हैं। फिर भी वह यह नहीं समझीं कि बंगालिन मालविका का निर्वाह उनके घर में कैसे होगा ?

किशोर के पिता ने इस भूल को जैसे गले लगा लिया था। वह बहू को आशीष देते, उसे अपना स्वेटर बनाने के लिये कहते। माँ देखती तो कुढ़ती रहतीं। उन्हें मालविका में कोई विशेष गुण दिखाई न देता। केवल उसकी बड़ी-बड़ी आँखें वह देखतीं तो सोचतीं, जाने इन आँखों के जादू ने कैसे उनके सपूत को बांध लिया, जो स्वच्छन्द पक्षी की तरह खुला फिरता था। मां को बहू की कई अदा न भाती थी। सलीके से उठना, बैठना, आंचल सम्हाल कर सिर पर रखना, अपनी घनी केश-राशी के जूड़े पर, ससुर के आने से, झट से आंचल ले सिर पर ओढ़ लेना—यह सब उन्हें ढोंग लगते। किशोर को यह क्या अठारहवीं सदी के "ऐटीकेट" पसन्द आए, जब कि अपनी बिरादरी में, अमीर से अमीर लड़की मौजूद है।

प्रमीला को बहू बना लेने की कितने वर्षों से साध थी। प्रमीला बी० ए० तक पढ़ी है। क्या हुआ जो मालविका एम० ए० तक पढ़ी है...प्रमीला सितार बजा लेती है। मालविका अपनी भाषा के गाने ऐसे दर्दनाक स्वर में गाती है कि किशोर की मां को, अर्थ न समझते हुये भी, केवल स्वर से रुलाई छूटती है। भला यह भी गाना हुआ ? गाता तो आदमी अपना और सुनने वालों का मन प्रसन्न करने को है। भाड़ में जाए ऐसा गाना ! प्रमीला बहू बन कर आती तो साथ में दस हज़ार का

दहेज लाती। घर की नाक रहती। अब दहेज फूटी कौड़ी भी न आया था, न किसी रिश्तेदार को दो रुपये भी मिलनी में मिल थे। मालविका सास का रुख देखती तो हंस देती। मुस्करा कर काम में लग जाती।

तीनों ननदें भी मां का आचरण देखतीं तो उसी तरह भाभी से पेश आतीं। केवल मंझली ननद सीता ,भाभी का ख्याल रखती। और मां की आंख बचा कर भाभी से हंस बोल लेती। कभी-कभी बाज़ार भी भाभी के साथ चली जाती। एक ही ऐसा स्थल था जहां सास, बंगालिन बहू के साथ समझौता करती। अपने पास बैठा कर बहू से ताश खेलती। किशोर की मां घंटों ताश खेल सकती थीं। बहू भी ताश खेलना जानती है, तरह तरह के खेल उसने सास को सिखाये हैं।

किशोर, पिता के लाख कहने पर भी, उनकी दूकान पर नौकरी न कर सका। वह स्थानीय कालेज में अध्यापक है। मां को बेटे से नौकरी की वजह से कोई शिकायत नहीं। उस दूकान में भी क्या रखा है। एक वह स्वयं हैं, दो-दो नौकर हैं। इतने लोग वहां दूकान में क्या करेंगे ?

मालविका मां बनने को हुई तो सास की आँखों में तिरस्कार कुछ कम हो गया। परन्तु थोड़े ही दिन, कुछ ही महीने तक। सास ने बहू से पौत्र की फ़रमायश कर दी। मानो बच्चे का लड़का या लड़की होना केवल उसी के हाथ में है। घर में असली घी मंगवाया गया। मालविका के लिये दूध अलग लिया जाता। फलों का रस, उठना बैठना, खाना पहनना, सब सास के विशेष

निरीक्षण में होने लगा। मालविका सब कुछ समझती और मन ही मन मुस्करा देती।

एक दिन वर्षा हो रही थी। मालविका की सास सुबह-सुबह कपड़े धो रही थीं। बेटियां उनकी स्कूल अथवा कालेज जा चुकी थीं। घर में सिवाय एक नौकर के तीसरा कोई न था। सास ने बहू को छत पर जाकर धोती बघारने को कहा। बहू छत पर गई। उतर रही थी तो पांव फिसल गया। लड़खड़ाती हुई गिर पड़ी। गर्भपात हो गया, बच्चा जाता रहा।

इसमें भी मालविका का ही दोष निकाला गया। इसे सलीके से काम करना नहीं आता। यदि सलीका जानती होती तो पांव कैसे फिसलता, और गर्भपात कैसे होता?

पौत्र देखने की साध सास के हृदय में ही रह गई। वह मालविका को उसके लिये कभी क्षमा नहीं कर सकी। उठते-बैठते उस पर ताने कसतीं। उसकी माँ को भी कोसतीं। मालविका सुनती और चुप रह जाती। किशोर के कालेज में गरमी की छुट्टियां थीं। वह कालेज नहीं जाता, दिन भर अपनी मां का अपनी पत्नी से कटु व्यवहार देखता तो उसका हृदय द्रवित हो उठता। उसने मालविका से कहा भी—"चलो हम अलग रहने लगें।"

"नहीं, तुम इकलौते बेटे हो, माता जी क्या कहेंगी?"

"तभी तो कहता हूं। वह हर समय तुम्हें कुछ न कुछ कहती रहती हैं। हम अलग घर लेकर क्यों न रहने लगें।"

मालविका की बड़ी बड़ी आंखें आश्चर्य से भर उठतीं, "तुम अलग रहोगे, तुम्हारे माता-पिता क्या कहेंगे ? तुम तो उनके इकलौते हो ?"

किशोर चुप हो जाता। उसकी तीनों बहनें मां की ओर देख कर भाभी की जी भर कर निन्दा करतीं, कोसतीं।

किशोर ने अपनी मां से यह कह भी दिया कि वह तो बाहर रहना चाहता है परन्तु मालविका ही उसे वैसा करने से रोक रही है।

मां ने सुना तो हंस कर बोली—"वाह बेटा, मुझे सिखलाने आया है। वह कहती होगी तुझे कि चल कहीं बाहर रहते हैं और तू मानता न होगा।"

किशोर को अपनी मां की बात पर बहुत अफसोस हुआ। मालविका का क्या दोष है ? कल उसकी कोई बहन ऐसी जगह पर शादी कर ले तो ऐसे घर में वह क्योंकर रह सकेगी ? उसकी सास उससे ऐसा व्यवहार करे, तो ?

शहर में 'माता' का प्रकोप था, मालविका की सास को भी 'माता' निकल आई। फैलती गई। भयानक रूप से निकल आई। लड़कियों को अपने रूप की चिन्ता थी। एक नौकरानी मिली परन्तु उसे, किशोर की माँ अपना शरीर छूने न देतीं। मालविका सास की सेवा करती। रात-रात भर जाग कर फफोलों पर दवाई लगाती, पास बैठती, दवाई पिलाती, सांत्वना देती।

किशोर की माँ कई बार कहती—"बह तेरा रूप कहीं

नष्ट न हो जाये"। वह सदैव एक ही उत्तर देती—"माता जी, शरीर का कोई अंग दुःखी हो तो उसे काटकर तो नहीं फेंक दिया जाता, फिर आप चिन्ता न करें, मैंने भी सब के साथ टीका लगवा लिया था।"

"और तो कोई मेरे पास भी नहीं फटकता, बहू।"

"किसी को फुर्सत नहीं रहती माता जी, आप अन्यथा न सोचें।"

सास मन ही मन उस घड़ी को पछताती जब उन्होंने मालविका को भला-बुरा कहा था। अब तो कुछ हो न सकता था।

डेढ़ महीने की लम्बी बीमारी से जब किशोर की मां उठीं तो उनके नेत्र ज्योतिहीन हो चुके थे। अब उन्हें स्नान करवाना, खाना खिलाना, सब मालविका करती। घर का प्रबन्ध भी उसी के हाथों में था। भंडार की चाबी उसे थमा दी गई थी। ननदें भी मालविका से दबतीं, क्योंकि रुपया पैसा वही निकाल कर देती।

किशोर की मां अब मोहल्ले में बठती तो अन्तर्-प्रान्तीय विवाहों को ले बैठतीं। उनका कहना था, दूसरे प्रान्त की लड़कियाँ बहुत अच्छी होती हैं, मालविका देवी का अवतार है, उन्हें मौत के मुख से बचा कर लाई है। अब जब आँखें ज्योतिहीन हो गई हैं, तो वह संसार उसके नेत्रों से देखती हैं। यदि मैं पहले चेत जाती तो शायद मुझे इतनी बड़ी सजा न मिलती। मन की आँखें खोलने के लिये शारीरिक नेत्र खो देने पड़े।

कुसुम

कुसुम

कुसुम मां बनना चाहती थी। आठ वर्ष 'नर्सिंग' का काम करने के बाद जब कुसुम का विवाह हुआ तो उसे लगा था, उसके स्वप्न साकार होने का समय समीप है। विधाता को शायद वह स्वीकार न था। कुसुम के पति की मृत्यु हो गई। पाँव फिसल जाने से दिमाग में चोट आ गई थी, देखते देखते ही वह समाप्त हो गए थे।

कुसुम के पति भी रोगी की हैसियत से अस्पताल में आए थे। किसी कहानी की नायिका की तरह कुसुम का विवाह उनसे हो गया था। अपनी आठ वर्ष पुरानी नौकरी को वह छोड़ना तो नहीं चाहती थी; परन्तु पति नहीं माने थे।

आज पति की मृत्यु को दो मास हो चुके हैं। बीमा कम्पनी से उसे भारी रकम भी मिली है। कुसुम इतने पैसे का क्या करे? उसे केवल सन्तान की चाह है। बचपन में उसे गुड़ियों से खेलने का शौक था। उसकी मां नर्स थी, इसलिये वह जब

बात करती तो बच्चों की—आज अमुक के घर छः पौंड का लड़का पैदा हुआ। दोपहर को जो लड़की पैदा हुई थी वह तो ऐसे लगती थी जैसे चाँद धरती पर उतर आया है। जब कुसुम बिल्कुल छोटी थी तो मां यह बातें पड़ोसिनों से करती थीं। कुसुम बड़ी हुई तो यह बातें उससे भी करने लगीं। कुसुम ने प्रसव बेदना में छटपटाती स्त्रियों को देखा था—बाद में जब फूल सा बच्चा उनके हाथ में पकड़ा दिया जाता तो मातृत्व कैसे मुस्करा उठता, यह भी उसने देखा था। कुसुम का मन भी उस पवित्र अनुभूति से विभोर होने के लिए मचल उठता। वह अपना मन इधर-उधर की बातों में लगाने का असफल प्रयत्न करती। आकाश की ओर देखती तो उसे ऐसा लगता मानो वह भी उसकी उदासी से द्रवित होकर सहानुभूति जतला रहा है। रात्रि की नीरवता उसे तड़पाती और वह दिन निकलने की प्रतीक्षा करती। उसको अपने मन के भीतर भी सूना-सूना सा लगता।

वह स्वयं अनुभव करने लगी थी कि मातृत्व की भावना अब रोग बन गई है। वह मां बनने के लिए व्याकुल हो उठी। उसके विवाह में, हंसी-हंसी में, एक सखी ने बच्चे के खिलौने, एक छोटा सा स्वेटर, और नन्हे-नन्हे मौज़े बुनकर दिये थे। कुसुम उठते-बैठते उन वस्त्रों को देखती और अपनी अवस्था पर रोती। यह उसकी दिनचर्या का एक अंग हो गया था कि वह दिन में दो-तीन बार उन वस्त्रों को अवश्य देख लेती, सहलाती और फिर यथास्थान रख देती।

कुसुम सोचती, शिमला जैसे स्थान में उसका मन नहीं

लगता तो कहीं दूसरे नगर में जाकर कैसे लगेगा ? कुसुम ने धीरे धीरे अपनी पड़ोसिन से मेल मिलाप बढ़ाना शुरू किया। पड़ोसिन आयु में कुसुम के बराबर की थी, चौबीस-पच्चीस वर्ष की, भारी-भारी शरीर, गोरा हंसता हुआ मुख। वह चार बच्चों की मां थी। कुसुम पड़ोसिन को देखती तो उसे लगता जैसे उसका जीवन पूर्ण है, उसे किसी प्रकार का अभाव नहीं।

पड़ोसिन कुसुम को देखती तो आह भरके कहती—"बहन असमय में तुम्हारा सुहाग जरूर लुट गया है। परन्तु भगवान् ने तुम्हें और कोई दुःख नहीं दिया। खुले हाथों दाता ने तुम्हें रूप दिया है, रुपया दिया है, फिर मुझ से पूछो तो सब से बड़ी बात है कि जब चाहो अपने पांव पर खड़ी हो जाओ। हमारी तरह तो नहीं कि पाई पाई का हिसाब पति को बताओ। चार-चार बच्चे जान का बवाल बने रहते हैं।"

कुसुम उसे टोकती और हमेशा यही कहती—"बच्चे जान का हमेशा बवाल नहीं हुआ करते, बहन। वह तो सौभाग्य है, चाह कर भी मुझ जैसे लोग जिससे वंचित रह जाते हैं।"

पड़ोसिन बड़बड़ाती अपने घर चली जाती, सोचती, दो-चार हैं नहीं इसको तंग करने के लिए, तभी इस तरह की बातें बनाया करती है।

पड़ोसिन की लड़की ऊषा को, जिसकी आयु ग्यारह वर्ष के लगभग थी, 'टाइफायड' हो गया। उसकी मां को दूसरे बच्चों से इतनी फुरसत ही नहीं मिलती थी कि बेटी की परि-चर्या कर सके। कुसुम बच्ची का बुखार में तपा चेहरा देखती तो उसी के पास जा बैठती। ऊषा धीरे-धीरे कुसुम को प्यार

करने लगी । जब तक कुसुम मौसी न आजाती, बच्ची के गले से दवाई ही न उतरती । कुसुम को भी काम मिल गया था । लगभग चालीस दिन के निरन्तर परिश्रम से कुसुम ऊषा को ठीक कर पाई । ऊषा बिस्तर से उठ कर चलने फिरने लगी । वह अपनी कुसुम मौसी के घर भी आने जाने लगी ।

एक दिन ऊषा कुसुम को एक पत्र दे गई कि उस के पिताजी ने दिया है । कुसुम ने पत्र खोला तो उसमें पचहत्तर रुपये का एक 'चैक' था । कुसुम के पिता ने लिखा था, कि वह बहुत आभारी हैं कि कुसुम ने उनकी बच्ची को जीवन दान दिया है । 'चैक' देख कर कुसुम के हृदय को बड़ी गहरी चोट पहुंची । ऊषा को वह अपनी बच्ची मानकर उसकी देखभाल करती रही थी । कुसुम को लगा कि वह नर्स रह चुकी है, इस लिये रुपये भेजे हैं । क्या ऊषा की अपनी मौसी को देखभाल करने के दाम दिए जाते ?

कुसुम ने तय कर लिया वह शिमला शहर छोड़ देगी । यहाँ आकर उसे कोई सुख नहीं मिला । उसने अखबारों में नौकरी के विज्ञापन देखना शुरू कर दिया । एक दिन उसने पढ़ा, 'गवर्नेस' की जगह खाली है । वेतन केवल सत्तर रुपये था । कुसुम ने आवेदन पत्र भेज दिया । पांचवें दिन उसे नियुक्ति-पत्र और यात्रा का पेशगी खर्च मिल गया । कुसुम ने अपने पड़ोसियों को भी नहीं बतलाया कि वह जा रही है । ऊषा तथा उसके परिवार वालों को बिना मिले उसने शिमला छोड़ दिया । उनका 'चैक' लौटाना वह न भूली थी ।

नये घर में कुसुम का मन रम गया। बच्चों की जननी न भी होकर उसे लगा कि वह उनकी मां है। मुन्ना और बिटिया को वह देखती तो उसका हृदय वात्सल्य से भर उठता। बच्चों को बड़ी चाह से स्नान करवाती, कपड़े पहनाती और भोजन करवाती। समय पर उन्हें पढ़ाती भी।

एक दिन कुसुम मालकिन की रज़ाई में टांके लगा रही थी। मालकिन ने स्वयं बच्चों को खिलाने का प्रयत्न किया। बिटिया 'कुसुम आंटी' कह कर चिल्लाने लगी। मुन्ना ने मुंह फुला लिया। बहुत शोर करने लगे तो कुसुम रज़ाई छोड़ कर बच्चों के पास आ गई। उनके पिता ने देखा, पल भर में रूठे बच्चे फिर मान गए हैं, तो वह हंस कर बोले, "अरे वह ममी से अधिक कुसुम आंटी को मानते हैं।"

कुसुम यह सुन कर प्रसन्न हुई। बच्चों की मां ने यह सुना तो अनजाने की ईर्ष्या की चिनगारी उसके हृदय में सुलगने लगी।

पहले वह कुसुम से बहुत प्रसन्न थीं। अब बात-बात पर टोकतीं। एक दिन 'लान' में वह बच्चों से खेल रही थी कि उनके पिता भी अचानक वहाँ आगए। कुसुम और बच्चों के पिता किसी बात पर हंस पड़े। मालकिन बरामदे से यह देख रही थीं। इस सुअवसर को वह कैसे खो देतीं? वह कुसुम को बुरा भला कहने लगीं—"तुझे लाज तो छू नहीं गई है। आखिर तू नर्स है, चरित्रहीन, तूने मेरे बच्चे पराये कर दिये। अब पति हथियाने भी चली है। निकल जा मेरे घर से।" माल-

किन शायद चप्पल से कुसुम को मारतीं, अगर बिटिया कुसुम से न चिपट जाती।

उसी शाम को कुसुम ने वह घर छोड़ दिया। 'कुसुम आंटी', बिटिया का भोला और तोतला सम्बोधन, उस को बहुत दिनों तक पुलकित करता रहा। दो-चार दिन एक परिचित के घर में बिताकर कुसुम ने अस्पताल में नौकरी कर ली और वहाँ के क्वाटरों में आकर रहने लगी। कार्य में संलग्न रहने का बहुत अनुकूल प्रभाव कुसुम के मन पर नहीं पड़ा। वह सड़क पर किसी मां-बच्चे को देखती तो उसका हृदय रो उठता। आंसू जैसे उसकी नाक पर रखे रहते। वह अपनी इस अनचित मनोवस्था से तंग आगई थी। हृदय की पीड़ा को किस तरह समाप्त कर दे वह न समझ पाती थी। रात्रि को सोते समय उसे गोरे-गोरे गोल-गोल चेहरे नज़र आते, भोजन सामने रखा रह जाता, वह न खा पाती। अस्पताल के काम से त्यागपत्र देकर कुसुम फिर एक बार अपने घर शिमला लौट गई।

पड़ोसिन को पता चला, कुसुम आई है, तो वह उससे मिलने गई। पड़ोसिन की गोद में चार-पाँच महीने का शिशु था, गोरा लाल लाल, अति सुकुमार। कुसुम को देख हंस पड़ा और उसकी गोद में आने के लिए लपकने लगा। कुसुम ने बच्चे को बहुत प्यार किया। पड़ोसिन थोड़ी देर बैठी और चली गई।

बच्चे के मुलायम शरीर का स्पर्श अभी भी कुसुम की बाहों में ताज़ा था। वह बेचैन हो उठी। इधर-उधर घूमने लगी। उसे लगता जैसे उसकी आत्मा शरीर को चीर कर बाहर आ रही है। संध्या हो गई, अन्धकार बढ़ गया, कुसुम

ने अपने कमरे में प्रकाश भी नहीं किया। वह उठ कर छत पर चली गई। वहां घूमती रही। उस रात उस ने भोजन भी नहीं किया था। छत के ऊपर बड़ी ठंड थी। शिमला में दिसम्बर मास की रात, कुसुम के शरीर से ज्वाला निकल रही थी। कुसुम यह समझने में असमर्थ थी कि यह ज्वाला कैसी है। उस के मन में एक ही भावना काम कर रही थी। वह पड़ोसिन का नन्हा बच्चा कैसे वहाँ से ले आए और भाग जाय।

घड़ी ने ग्यारह बजाये, कुसुम ने अपने पड़ोसियों के घर के बीच वाली ढाई फुट ऊंची मुंडेर पार की और सीढ़ियां उतर गई। बांई ओर कमरे में क्षीण सा प्रकाश था। उस ने किवाड़ खोल दिये। दरवाजा खुला ही था। पड़ोसिन बच्चे के साथ बेखबर सोई थी। कुसुम ने झपट कर बच्चा उठा लिया। परन्तु वह सीढ़ियाँ चढ़ना भी जैसे उसे परिश्रम लग रहा था। एक-एक पग उठाना कठिन था।

छत पर पहुंच कर वह मुंडेर के पास आ कर बैठ गई। एक कदम भी उस से बढ़ाया नहीं गया। ठंड बढ़ती जा रही थी। तमाम कोशिश करने पर भी वह हिल नहीं सकी। वहीं की वहीं बैठी रह गई। शायद जीवन में पहली बार उसने कुछ ऐसा किया था, जो अनुचित था।

उसकी आत्मा ने जैसे उस के शरीर का साथ छोड़ दिया हो, वह निढाल हो गई थी।

शिशु के माता पिता विकल हो कर शिशु को खोजते-खोजते निराश हो गए थे, कि माँ यन्त्रचालित सी ऊपर छत

पर दौड़ गई। पहुंचते ही उसके मुख से निकला, 'बेबी मिल गया।' परिवार के सब सदस्य ऊपर पहुंचे, पहुंच कर जो देखा वह कितना रोमांचकारी था।

नया प्राणी नये सवेरे से नया स्पन्दन पा सके इसी कामना में मातृत्व भार से दबी नारी कटकटाते शीत में ठिठुर-ठिठुर कर जीवन दान देते गतिहीन हो गई थी। संज्ञाशून्य रह गयी थी।

सुलेखा

सुलेखा

०००००००

सुलेखा को उसकी गली के चौराहे पर कुमार मोटर पर छोड़ गया। सुलेखा ने मोटर से उतरते ही मुंह विचकाया, जसे साँझ की पूरी बात का कोई अस्तित्व ही न हो। सुलेखा समझती है कि इस रंगीन शाम का उतना ही महत्व है, जितना देखने वाले के लिए कनाटप्लेस के एक शो केस में पड़ी सजी-धजी प्रतिमा का होता है। दर्शक कुछ क्षणों के लिए प्रसन्न हो उठता है।

ठंड बढ़ रही थी, अभी रात्रि के केवल नौ बजे थे परन्तु फिर भी पूरी गली में निस्तब्धता छाई थी। छोटी सी हलवाई की दूकान के पास एक कुत्ता बराबर भौंकता रहता था, आज वह भी चुप था। सुलेखा ने सोचा, आज मुझ से तो वह कुत्ता भी अच्छा है जो कम से कम चुप तो है, शायद उसकी आत्मा सुखी है। केवल सुलेखा ही ऐसी है जिसे कभी भी तृप्ति नहीं मिलती, जिसकी आत्मा हर क्षण भटकती रहती है।

सुलेखा ने देखा गली की बाईं ओर वाले मकान में जो रहते हैं, वह सो रहे हैं। वह, दो ही काम जानते हैं, जानवरों

की तरह एक खाना दूसरा सोना। नहीं, वह मन ही मन मुस्कराई, इन की पत्नियाँ आपस में लड़-झगड़ भी तो लेती हैं। क्या वह किसी तरह से कम महत्व का काम है? दाँई ओर वाली बड़ी सी इमारत में बहुत से कमरों में बत्तियाँ जल रही थीं। सुलेखा जानती है, यहां 'सेक्रेटेरियट' में काम करने वाले क्लर्कों की वह श्रेणी रहती है जो, एक परीक्षा देती है तो तरक्की के लालच से, बड़े साहब को खुश करने के भय से, हमेशा परीक्षायें ही दिया करती है। कुछ क्लर्क इसमें केवल मैट्रिक पास होते हैं। वह इधर-उधर की परीक्षायें पास कर के किसी न किसी तरह बी० ए० कर लेते हैं। यह भी जीवन है, हर वर्ष एक न एक परीक्षा देते रहना। शायद हम लोग जीवन भर ही परीक्षा देते रहते हैं।

वह आगे बढ़ी, बूढ़ी सेठानी, जिसने कई वर्ष वैभव में बिताये थे......बीते दिनों की याद में कुछ गा रही थी, फटी आवाज़, बेसुरा गाना। सुलेखा शाल ठीक तरह से ओढ़ती हुई अपने घर की सीढ़ियाँ चढ़ गयी। इस पुराने मुहल्ले में जिस का एक सिरा दिल्ली की एक आधुनिक सड़क पर मिलता है, सुलेखा का घर है। यह घर उसके मामा ने उसे दहेज में दिया था। हाँ, सुलेखा का विवाह हुआ था। अब भी उसकी वेश भूषा किसी सधवा से कम नहीं, माथे पर नित्य नयी 'डिज़ाइन' की बिन्दी, सुरुचिपूर्ण जूड़ा, बढ़िया रंगीन रेशमी साड़ी, जिसका सरसराता पल्लू जब हवा में इधर-उधर उड़ता, तो हवा सुगन्ध से महक उठती।

सुलेखा सोचने लगी आज उसने नौकरानी को छुट्टी दे दी थी। शनिवार रात को वह भी सिनेमा देखने जाती है। खाने

के लिए इस समय कुछ भी नहीं होगा। चूल्हा जला नहीं होगा। 'हीटर' का तार टूटा है, आज उस तार को भी लगवाना था। सुलेखा कुछ भी न कर पाई। कुमार के साथ उसका प्रोग्राम था। भोजन वह कुमार के कहे अनुसार होटल में कर लेती परन्तु उस का मन नहीं माना। एक बार उस ने "न" कह दिया था, वह निभाना था।

सुलेखा सीढ़ियाँ चढ़ रही थी कि ऊपर से प्रभा नीचे आ रही थी। प्रभा के हाथ में चमड़े का एक सूटकेस था। उसके मुख से लग रहा था वह बहुत रोई है। आंखें सूज रही थीं, बाल अस्त-व्यस्त थे। प्रभा तथा उसका पति सुनील लगभग तीन महीने से उसके किरायेदार हैं। नई-नई शादी हुई है। सुनील पहले कहीं एक छोटा सा कमरा लेकर रहता था अब वह सुलेखा के घर में रहते हैं। सुनील किसी बीमा कम्पनी के दफ्तर में काम करता है। सुलेखा को वह सौ रुपये महीना मकान का किराया देते हैं। उसका अनुमान है कि सुनील अच्छा कमाता होगा।

प्रभा की आयु भी बीस-बाईस के बीच होगी। साधारण नख-शिख, गेहूआं रंग, मंझला कद, कुल मिला कर देखने में वह बुरी न लगती थी। नए-नए विवाह का रंग अभी प्रभा से उतरा न था वह निखरी सी लगती, साड़ियों और आभूषणों की चमक भी अभी बनी थी। सुलेखा, नव दम्पति को हंसता हुआ, खिलता हुआ, हाथ में हाथ डाले बाहर जाता भी देखती और कभी-कभी आपस में झगड़ कर रूठ जाते, वह भी उससे छिपा

नहीं रहता था। ऊंचे-ऊंचे उनकी बातचीत करने की आवाज़ फिर आती, वह सुलेखा सुनती। आज एकाएक यह प्रभा सूटकेस हाथ में उठाए कहाँ जा रही है? धक् से सुलेखा के मन में किसी ने जैसे हथौड़े की चोट कर दी हो। ऐसे ही एक दिन आज से सात वर्ष पूर्व सुलेखा भी अपना सब छोड़-छाड़ कर एक चमड़े का सूटकेस लेकर नाना के पास आ गई थी, तब की आई वह वापिस नहीं जा सकी। अब उस का जीवन कितना शुष्क और बेजान सा चल रहा है, वह हेमन्त को ऐसे ही छोड़ आई थी। ज़रा सा मनमुटाव हुआ था।

सुलेखा ने विद्युत गति से प्रभा के हाथ का सूटकेस छीन लिया। प्रभा के आँसू ज़रा सा सहारा पाकर निकल पड़े, "नहीं, जीजी, तुम मुझे जाने दो।"

"कहां जा रही हो?"

"वाई. डब्लयू. सी. ऐ.।"

"वहां क्या है?"

"कुछ नहीं।"

"तो घर छोड़ कर वहाँ क्यों जा रही हो?"

"जिन का घर है, वह घर में रहेंगे, मुझे घर से कुछ नहीं लेना-देना।"

सुलेखा का अनुमान ठीक ही था। दोनों में शायद झगड़ा हुआ था। यह छोटे-छोटे झगड़े विवाह के पहले दिनों में तो ऐसा उग्र रूप ले लेते हैं जैसे तलाक हो जाय तो वही उन झगड़ों का समाधान कर पाएगा। सुलेखा भी इन्हीं झगड़ों को

तूल दे कर इतनी बढ़ी कि बिल्कुल अलग होगई। आज उसका भी सुखी जीवन होता, घर होता, वह भी व्यवस्थित ढंग से जीवन व्यतीत करती। अब तो जैसे उस सबकी सम्भावना भी नहीं है।

सुलेखा प्रभा को अपने 'फ्लैट' में ले गई। सुलेखा के घर प्रभा के 'फ्लैट' के सामने से होकर जाना पड़ता था। सुनील कमरे में इधर से उधर चक्कर लगा रहा था। रेडियो उसने इतना ऊंचा लगा रखा था कि तीन मंजिल की बिल्डिंग में और किसी को रेडियो लगाने की आवश्यकता नहीं थी। सुनील ने प्रभा को सुलेखा के साथ जाते देखा नहीं, क्योंकि उस समय उसकी पीठ थी, शायद दरवाजा उसका अभी भी खुला था।

सुलेखा ने प्रभा को कमरे में बैठा दिया और स्वयं चूल्हा जलाने लगी।

प्रभा का क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ था। वह कुपित स्वर से बोली, "जीजी, आप को क्या पड़ी है ? किसी के घरेलू मामलों में आप क्यों आती हैं ?"

सुलेखा के मन को यह बात छू गई। उस ने चूल्हा जलाना छोड़ दिया। वह प्रभा के पास आ कर बैठ गई। उसने प्रभा से बड़े नम्र स्वर में पूछा कि उसके विवाह पर माता-पिता का कितना खर्च आया होगा।

"लगभग आठ हजार।"

"तुम्हारी पढ़ाई पर ?"

"नहीं जानती जीजी।"

"कहाँ तक पढ़ी हो ?"

"बी० ए० पास हूं।"

"यानी दस हज़ार के लगभग, क्यों ?"

प्रभा हैरानगी से सुलेखा के मुख की ओर देख रही थी कि यह हिसाब-किताब किस लिये जोड़ा जा रहा है।

"सभी की पढ़ाई पर खर्च होता है जीजी, मेरी पढ़ाई पर कोई विशेष तो नहीं हुआ ?"

"जानती हूं, परन्तु तुम विशेष बात तो करने जा रही हो ?"

"वह क्या ?"

"पति को छोड़ कर, घर को छोड़ कर जा रही हो।"

"बहुत सी नारियां छोड़ देती हैं।" प्रभा के मन में यह था, कि वह कह दे, तुम ने भी तो छोड़ा है जीजी, मुझे ही क्यों रोकती हो।

"एक आदमी यदि ग़लती कर देता है, तो इसका यह अर्थ नहीं कि दूसरे भी करें।"

"कहना बहुत आसान है जीजी, निभाना बहुत मुश्किल। फिर आप कैसे जान सकती हो, बन्धन कितना कष्टप्रद हो सकता है।"

"ऐसे स्नेह के बन्धन को ही न पहिचान पाओगी तो पीछे पछताने से कुछ न होगा। तुम कभी अनुमान लगा सकती हो, मेरा जीवन कैसा नीरस है ?"

प्रभा ने एक क्षण सुलेखा की ओर अविश्वास भरी दृष्टि से देखा, सरस जीवन कैसा होगा ? नित्य होटल में खाना खाती है, सिनेमा देखती है, बाहर घूमती-फिरती है, कुछ भी तो चिन्ता नहीं, इस मकान का किराया इतना आ जाता है कि इसे रुपये पैसे काफी मिल जाते हैं।

"ओह, जीजी तुम्हारा जीवन नीरस है तो सब का वैसा ही हो, तुम्हें किस बात की कमी है ?"

सुलेखा की अनुभवी आँखें प्रभा की कच्ची बुद्धि को पढ़ने का यत्न कर रही थीं। जीवन का वास्तविक सुख यह आजकल की लड़कियाँ मोटरों में घूमने फिरने में ही मानती हैं। सुलेखा ने भी तो ऐसा माना था, वह तो इस सब के आगे बढ़ गई थी। उसे बचपन से ही यह शिक्षा मिली थी कि पुरुष की बराबरी करनी चाहिये। वह भी इसी समता की होड़ में पति से रोज़ लड़ती थी। बहुत देर बाद अब वह समझी है कि जब दो ऐसे व्यक्ति जिनका जन्म दो भिन्न जगहों पर होता है भिन्न वातावरण में जो पलते हैं, बढ़ते हैं, वह जब विवाह के सूत्र में बध कर साथ रहने लगते हैं, तो क्या आश्चर्य कि उन के मतभेद होते हैं। वह एक-दूसरे से लड़ते झगड़ते हैं। सुलेखा को याद है; गीली लकड़ी की तरह वह सुलगती रहती थी। उस समय यदि कोई भी उसे शान्ति और धैर्य की शिक्षा देता था तो उसे वह अपना दुश्मन समझती थी। प्रभा भी आजकल वैसी ही स्थिति में है। कौन समझाये ? जवानी में कोई ही समझता है, प्रायः लोग अपनी भू ों से सीखते हैं।

उस रात तो प्रभा के प्रति सुनील को किसी तरह मना कर, समझा कर सुलेखा ने प्रभा को घर भिजवा दिया। सुलेखा का अपना जीवन बरबाद हो गया है। वह किसी दूसरे के जीवन को बरबादी से बचा पाए तो कितना अच्छा हो। क्या प्रयत्न करने पर भी सुलेखा ऐसा कर पायेगी ? प्रभा उसे अपना

दुश्मन मानती है।

सुलेखा ने देखा वह दोनों फिर हंसने-बोलने लग गए थे। सुलेखा उन्हें देख कर प्रसन्न होती। उसे जाड़े की वह ठंडी और लम्बी रातों का ख्याल आ जाता जब वह अकेली पड़ी रहती है। कोई बात करने वाला भी नहीं होता। कोई पानी पूछने वाला भी नहीं होता। सुलेखा सोचती, चाहे जैसे हो, प्रभा को भगवान् ने सुबुद्धि दी है। यह क्या कम है।

सुलेखा का अपना जीवन क्रम वैसे का वैसे ही चलता रहा, उसमें कोई अन्तर नहीं आया। वह लाख बार अनुभव करती, कि उसने भूल की है, परन्तु उसका सुधार अब सात वर्ष बाद कैसे हो सकता था। हेमन्त ने कभी उसे पत्र तक नहीं लिखा था। सुलेखा ने केवल यह सुना था कि वह नौकरी छोड कर एक सगीत विद्यालय चलाता है। सुलेखा ने भी तो उसे कभी पत्र नहीं लिखा। अब बीच की खाई लाँघने का साहस सुलेखा में नहीं था। फिर वह कैसे भूल सकती है, कि वह सुबह छः बजे से लेकर रात्रि तक केवल सुलेखा के चित्र पर, उठने-बैठने पर, यहाँ तक कि खाने पीने की टीकाटिप्पणी किया करता था। सुलेखा को भी सुबह-सुबह उठ कर गाना पसन्द नहीं था। प्रभा और सुनील में भी मतभेद है, प्रभा बडी खर्चीली है। वह रुपये का कोई मूल्य नहीं समझती, सुनील उसके खर्चों से परेशान रहता है। एक और परिवार सुलेखा का किरायेदार है, बहुएं आ गई हैं, फिर भी घर के मालिक की

ऐसी आदत है कि वह अब भी अपनी पत्नी को गालियां देता रहता है। पुरुषों की एक यह भी श्रेणी है। उसकी पत्नी, बन्तो कहारिन की तरह उसको बराबर गालियां नहीं देती, शायद समाज के ऐसे बन्धन हैं।

प्रभा जब भी सुलेखा को बाहर जाता देखती, तो व्यंग्य के स्वर में यही कहती—"बहुत नीरस है न आप का जीवन, जीजी!"

सुलेखा जल्दी में होती; वह मुस्करा देती, इस आरोप का कुछ उत्तर नहीं देती। यह आभास सुलेखा को मिलता रहता, कि प्रभा मन ही मन उसके जीवन को स्पर्धा की दृष्टि से देखती है।

धीरे-धीरे सुलेखा ने घर में रहना शुरू किया। अब अपने मुहल्ले की उन स्त्रियों को पढ़ाने लगी जिनके लिये काला अक्षर भैंस बराबर था। सुलेखा ने देखा कि प्रभा घर में नहीं रहती। आये दिन उसकी पति से तू-तू मैं मैं होती रहती है।

दो तीन मास व्यतीत हो गए थे कि एक दिन सुलेखा सुबह ही सुबह रसोई में गई। उसकी नौकरानी ने बताया कि प्रभा बीबी तो घर में है ही नहीं।

"कहा गई?"

"कहीं भाग गई। सुनील बाबू रो रहे हैं।"

"क्या?"

"सच कह रही हूं बीबी जी, सुनील बाबू रो रहे हैं।"

सुलेखा अपने काम में लग गई। यह समय नहीं था कि

वह सुनील से जाकर कुछ कहती। परन्तु सुलेखा को गहरा धक्का लगा; जैसे उस ने अपनी ही गलती फिर दोहराई हो।

प्रभा के जाने के बाद सुनील ने सुलेखा का घर छोड़ दिया। वह बड़ा ही करुणाजनक दृश्य था, जब वह सब सामान लेकर घर से निकला। सुलेखा को वह दिन भी याद था जब वह सामान लेकर घर आया था। प्रभा अपने साथ कुछ भी न ले गई थी। सुनील ने सब सामान प्रभा के पिता के घर भिजवा दिया जो उन्हीं के वहाँ से आया था।

सुलेखा को उसकी नौकरानी बीच बीच में बतलाती जाती थी कि सुनील आज इस लड़की को घर में लाया, परसों उसको लाया था। घर हट कर मुसाफिरखाना बन गया था, वह भी अब सुनील छोड़कर जा रहा था।

सुनील को सुलेखा का मकान छोड़े कोई छः मास हो गए थे कि एक दिन सुलेखा ने अखबार में पढ़ा; हेमन्त और प्रभा का विवाह हो गया है। साथ में चित्र भी था। उसमें सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं थी, कि यह कोई और हेमन्त और कोई और प्रभा है। सुलेखा ने चित्र देखा और एक लम्बी निश्वास छोड़ी। स्पर्धा या ईर्ष्यावश नहीं, केवल यही सोचकर कि क्या यह भविष्य में निभा पायेंगे? प्रभा का उद्दंड स्वभाव और हेमन्त की हर समय छिद्रान्वेषण करने की आदत; दोनों में कहाँ सामञ्जस्य है?

मूर्तियाँ

मूर्तियां

कला देख रही है; नौकर लम्बे बांस के साथ बंधे ब्रुश द्वारा जाला साफ कर रहा है। वह मेज पर रखकर भवानी भट्टाचार्य का नवीन उपन्यास पढ़ने का प्रयत्न कर रही है। पुस्तक का शीर्षक है, "टू मैनी हंगर्स"—नाना प्रकार की भूख—वह पन्ने उलटती जा रही है। पुस्तक में उसका मन नहीं लगता। आँखें ऊपर उठायी तो देखा, एक मकड़ा जाले में से शीघ्रता से निकल कर दीवाल पर चलने लगा। नीचे कला की मेज टिकी है, वह उस से उतरता नहीं, दीवाल पर बैठने का साधन नहीं; कमजोर है वह। यदि जाले के साथ ही लिपट कर चला जाता तो उसका अस्तित्व भी वहीं समाप्त हो जाता। उसने बचने का प्रयत्न किया, अब भटक रहा है।

कला का मन मकड़े के लिए सहानुभूति से भर उठा। काश! वह उसके लिए ऐसा ही ताना-बाना बना सकती। तभी उसने देखा कि वह बहुत दूर सरक गया, और फिर लौटकर वहीं आया जहाँ से उसने आरम्भ किया था।

कला भी लौट आई थी वहाँ जहां से उसने जीवन आरम्भ किया था।

पिता को मां से हर क्षण लड़ते देख, पैसे पैसे के लिए तंग करते देख, उसने मन में प्रतिज्ञा कर ली थी कि वह कभी भी विवाह न करेगी। पुरुष संसार से वह बदला लेगी। इक्कीस वर्ष की अवस्था में एम० ए० पास कर उसने एक मामूली कालेज में पढ़ाना आरम्भ कर दिया था। कैसी-कैसी अनोखी उमंगे थीं उसके मन में। उसे लग रहा था 'फ्लौरेन्स नाईटिंगगेल' की भांति वह भी पुरुष समाज को ललकार रही है। उसके अपने समाज में अभी तक कोई लड़की अठारह वर्ष से अधिक कुँवारी नहीं रही। ठीक इस मकड़े की भांति वह भी जाल से निकल आयी थी, अपना अलग अस्तित्व बनाने; संसार की चलती प्रथा से भिन्न होकर। कुछ देर सफलता भी मिली है उसे।

आकांक्षा पराकाष्टा पर पहुंच चुकी थी जिस समय दो ही वर्ष की नौकरी के उपरान्त उसे विद्यालय की प्रिन्सिपल बना दिया गया। वह विदूषी है, संसार यही कहता है। उसकी प्रतिभा की धूम है। उसके सद्व्यवहार और कार्यकुशलता की प्रशंसा होती है। वह यही तो चाहती थी। फिर अब एक वर्ष से उसकी परेशानी क्यों बढ़ने लगी है? पहले इतिहास में एम० ए० किया फिर मनोविज्ञान में किया और अन्त में राज-नीति में भी। अब एक वर्ष से कुछ नहीं किया। केवल कभी-कभी मन उकता जाने पर मिट्टी की मूर्तियां बनाया करती है। उसे अपना बाल्यकाल याद है। शायद तब तो कभी नहीं बनाती थी ऐसी मूर्त्तियां, न जाने अब यह नया स्वभाव क्यों

पड़ गया है। उसने मूर्त्तियां बनाना किसी से सीखा नहीं, केवल अभ्यास से ही आ गया है। ध्यान से मूर्त्तियां गढ़ती है तो कभी-कभी सुन्दर बन जाती हैं, उन पर रंग भी करती है, फिर उन मूर्त्तियों को बांट देती है इधर-उधर माली के बच्चों को, भिखारी बच्चों को।

उसको कालेज से ही एक छोटा सा बंगला मिला है, जहाँ उसने एक छोटासा बगीचा भी लगा रखा है। कालेज का माली उसे पानी देता है, फिर भी कला फूल पत्तियों को अपने हाथ से सहलाती है। होस्टल की छात्राएं, कभी कभी उससे पूछने आ जाती हैं। पिछवाडे वाले बराण्डे में अभी तक किसी को आने का साहस नहीं हुआ।

कला देखने में साधारण है, परन्तु मुंह पर सौष्ठव है, रह रह कर ऐसा झलक जाता है मानों दूध में उफान आया कि आया। पुस्तकों के साथ इतना कड़ा परिश्रम करने पर भी उसके मुख की आभा नहीं बिगड़ी। सिर के बाल एक दो कुछ सफेद हो गए हैं।

आज रविवार है। कालेज बन्द है। पुस्तक में मन न लगने पर कला ने फिर मिट्टी ली और मूर्त्तियां बनाने लगी। आज भी वह पिछवाडे के बराण्डे में ही थी।

"क्या कर रही हो कुमारी जी ?" डा० धीर ने मुस्कराते हुए पूछा।

धीर की आयु अट्ठाइस-उन्तीस वर्ष की है। रंग खूब गोरा है, ऐसे चमकता जैसे जून की दोपहरी में रेत का ढेर। धीर भी कालेज का डाक्टर कुछ समय पहले ही नियुक्त होकर आया था

"यहां कुछ मूर्तियां बनाने का प्रयत्न कर रही हूं।" कला कुछ झेंप रही थी।

"ओह मिट्टी की मूर्तियाँ!" धीर की वाणी में व्यंग्य था।

"डा० साहब यह तो कला है कला।"

कहकहा लगा दिया धीर ने—"कला; नारी की कला तो केवल उसकी अपारशक्ति का एक अणु है देवी जी, आप मिट्टी की मूर्तियां छोड़ सृष्टि की चलती फिरती मूर्तियों का निर्माण कर सकती हैं।"

कला लजा गई। इतनी पढ़ी-लिखी होने पर भी उसका लज्जा ने पीछा नहीं छोड़ा था। डा० धीर को यह कुछ बुरा नहीं लगा, वह सब बड़े सहज स्वर से कह गया था। कला को लजाते देख उसे आभास हुआ कि वह कुछ अनुचित कह गया है।

× × ×

कला को उठते बैठते यही ख्याल आता—"देवी जी आप तो सृष्टि की जीती जागती मूर्तियों का निर्माण कर सकती हैं।" दूसरे दिन कालेज पढ़ाने गई, तो मन में रह रह कर विचार उठता, क्या यह भोली भाली लड़कियां, हंसते हुए निर्दोष चेहरे, इन का भी किसी नारी ने निर्माण किया होगा। नहीं...नहीं...भगवान् ने, मानव कौन है निर्माण करने वाला। परन्तु भगवान् मानव को सहायता अवश्य देता है। नारी शायद बनी इस लिए है। ठीक तो है, यदि यह न होता तो संसार कब से समाप्त हो जाता।

कला धीरे धीरे अपने आप से बातें करती, साथ-साथ विद्यालय का काम भी करती जाती। मिट्टी की मूर्ति तो वह

अपने हाथ से बनाती है। परन्तु सजीव मूर्ति के लिए तो उसे सहायता लेनी पड़ेगी पुरुष की। उंह···क्या नीच बात है? पुरुष···जिन से उसे घृणा है······बहुत ही हार्दिक घृणा है।

संध्या समय जब वह घर आई तो डाक्टर धीर का एक छोटा सा पत्र था।

देवी जी,

मैं कल वाली बात के लिए बहुत दु:खी हूं, अनजान में ही ऐसी धृष्टता हो गई। आशा है आप क्षमा कर देंगी, मेरा वह सब कहने का तात्पर्य कभी भी असभ्य न था।

एक बार फिर क्षमाप्रार्थी

······धीर

धीर का नौकर खड़ा था, उसे आज्ञा थी कि उत्तर लेकर आना। कला को लिखना पड़ा।

डाक्टर साहब!

क्षमा करने की उसमें बात ही क्या है? आप ने तो एक साधारण सत्य को ही मुझ पर प्रकट किया है, जिसे शायद मैं भूल रही थी। आप को कष्ट हुआ, क्षमा चाहती हूं।

× × ×

कला के मन में द्वन्द्व चलता ही रहा। सजीव मूर्तियां! मिट्टी की मूर्तियां! सजीव मूर्तियों के लिए उसे जीवन की इच्छाओं का बलिदान करना पड़ेगा।

एक पुरुष की इच्छाओं का दास बनना पड़ेगा, साधना करनी पड़ेगी, एक घर बनाना पड़ेगा।

उसने अपने मन को टटोला, क्या वह इन सब बातों से जिन के लिए अब तक दूर रहती आ रही है, छुटकारा पा सकती है ? शायद नहीं ?

मिट्टी की मूर्तियों का क्या ? बनाईं और टूट गईं, या तोड़ दीं। यह भी समाज को, देश को कोई देन है ? नहीं यह तो कर्मभूमि से भाग जाना है।

तर्क चलता रहा......

कला सोचती रही......

मनचली

मनचली

०००००००००००

रात्रि के नौ बजे हैं, बलवन्त अभी खाना खाकर अपने पढ़ने की मेज़ पर बैठा है, उसका मन बड़ा उद्विग्न है। आज वह खाना भी ठीक प्रकार नहीं खा सका। मन अशान्त है... मनोविज्ञान पढ़ते-पढ़ते इतने वर्ष हो गये हैं। किन्तु न तो कभी उसने ऐसा चरित्र देखा है और न ही पढ़ा है। सविता... उसके संस्कार...भावनायें...सब विपरीत दिशा में बह रहे हैं।

यही सविता मनचली है...यार इसका परिचय करवा दिया होता...।

प्रोफेसर साहब सविता कलंकनी है...पति के रुपये पर सांप है,...बहनों के लिये कांटा है।...सविता...देवी सविता, जिन्दाबाद...सविता बहिन की जय हो, महात्मा गांधी की जय हो।

आज की सन्ध्या क्या व्यतीत हुई बलवन्त की। मनचला सविता, देवी सविता, कलंकिनी सविता...समाज की आँखों में किरकिरी सविता...पुरुषों का मनोरंजन सविता...क्या है। बलवन्त नहीं समझ रहा। समझना चाहता है, क्योंकि उसके जीवन में अचानक वह आ गई है। बलवन्त ने उसे

केवल दो मास पढ़ाया है, परन्तु फिर भी वह एक अमिट रेखा उसके मानस पट पर छोड़ गई है। बार-बार उस के जीवन में आकर दूर निकट का सम्बन्ध जोड़ लेती है।

क्या वह आरम्भ से मनचली थी? जब बलवन्त ने उसे पहली बार देखा है तब वह सत्रह वर्षीया, 'आई. ए' के दूसरे वर्ष में पढ़ने वाली छात्रा थी।

खादी की श्वेत धोती, धानी ब्लाउज पहने बड़े अन्दाज से उस ने कहा था, "नमस्ते प्रोफेसर साहब, अब आप हमें फिलासफी पढ़ाया करेंगे?"

बलवन्त मुस्करा दिया था। कितनी फूहड़ है यह लड़की; जब कि प्रिन्सिपल महोदय स्वयं उस का परिचय देकर गये हैं, यह फिलासफी के नये प्रोफेसर हैं। फिर यह बेढंगा प्रश्न क्यों?

बलवन्त को कुछ ही दिनों में सविता की प्रतिभा का परिचय मिल गया। वह एक छोटे से 'टेस्ट' में प्रथम रही थी। बलवन्त ने कहाथा, "सविता तुमने प्रश्न का हल बहुत अच्छा किया है; क्या बहुत मेहनत करती हो?"

"जी हां," छोटा सा स्पष्ट उत्तर था। श्रेणी के सब विद्यार्थी खिल खिला उठे। बलवन्त स्वयं भी मुस्कराये बिना न रह सका।

छोटा सा सरल उत्तर—मानो कांच के गिलास में वर्षा की बूंद गिरी हो। 'जी हां' की अनोखी झंकार बलवन्त के कानों में गूंजती रही, कभी कभी अध्ययन में खलल डालती रही।

जी हाँ ! ......जैसे जीवन के घोर सत्य का पोल खोल दिया था, इन शब्दों से ।

स्पष्ट बात करने से घबराती न थी, सविता निर्भय थी।

बलवन्त उस समय कोई नवयुवक छोकरा नहीं था, कि सविता की सब बातें अच्छी लगतीं । जीवन के बत्तीस वसन्त देख चुका था । दो नन्हें मुन्ने बच्चों का पिता था ।

अक्तूबर में कालेज के खुलते ही नौ अगस्त के दिन नेताओं के पकड़े जाने के कारण विद्यार्थियों ने एक जलूस निकाला । सविता सब से आगे थी, उसके हाथ में झंडा था। वह गिरफ्तार कर ली गई। कालेज के कितने ही छात्र उसके साथ पकड़े गए, कुछ सहानुभूति दर्शित करते काबू आ गए ।

तभी प्रिन्सिपल जो शायद अंग्रेजों से दब्बू थे कहने लगे, "कैसी लड़की है, कालेज का नाम डुबो दिया । मैं तो लड़-कियों को कालेज में लेने के पक्ष में न था ।"

बलवन्त ने सुना, बाहर आवाज़ आ रही थी, "सविता ज़िन्दाबाद, महात्मा गांधी की जय, नेताओं को छोड़ दो। सविता जिन्दाबाद ।' तभी प्रोफेसर मिश्रा जो सविता को इतिहास पढ़ाते थे बोले—"सविता भी बड़ी चालाक है, खादी पहनने से उसकी पहले ही धाक मच रही थी, अब उसने सुनहरा मौका देख दो दिन जेल में काटने की भी सोच ली ।"

बलवन्त ने इसका कोई उत्तर न दिया था। उसे कुछ

अटपटा लगा और एक दिन धर्मपत्नी को साथ लेकर सविता को जेल में मिलने गया।

"सविता, तुम एक होनहार छात्रा हो, पढ़ने में तेज हो, तुम्हें चाहिए कि क्षमा मांग लो और अपनी पढ़ाई फिर से आरम्भ कर दो, परीक्षा आने वाली है।"

सविता ने लम्बी गर्दन उठा कर बलवन्त की ओर देखा, परन्तु वह उसके भाव न पढ़ सका। और तभी उसने कहा।

"जी हाँ",

"जी हाँ", छोटा सा उत्तर--जिसने एक बार सत्य का पोल खोला था, शायद इस बार सविता के जीवन का सत्य छुपा दिया।

उसके दूसरे दिन ही सविता के पिता ने कालेज में आकर प्रोफेसरों से कहा था, कृपया आप लोग ही उसे समझाए, मेरा, अपनी मां का, बहिनों का कहा वह नहीं मानती।

बलवन्त को कुछ आश्चर्य हुआ। सविता कैद में ही रही। क्षमा नहीं मांगी। बलवन्त को लगा मान उसकी पराजय हो गई थी। एक छोटी सी बालिका ने उसे हरा दिया। कोई डेढ़ वर्ष बाद एक दिन उड़ती-उड़ती खबर सुनी बलवन्त ने, सविता का स्वास्थ्य खराब है, जेल से उसे रिहा किया जा रहा है।

वह कालेज नहीं आई, बलवन्त ने भी उसे मिलने का प्रयत्न नहीं किया। जीवन-व्यस्त था। छोटे से परिचय का छोटा-सा मोल था। कभी कभी कालेज के "स्टाफ-रूम" में

उसकी चर्चा चल जाती तो मिस्टर दास अंग्रेजी के अध्यापक सदैव कहते—"लड़की ने भावना में बहकर अपने विद्यार्थी-जीवन का सत्यानाश कर लिया।" बलवन्त सोचता, ठीक कह रहे हैं दास साहब।

प्राय: एक वर्ष उपरान्त बलवन्त को उसके ब्याह का निमन्त्रण-पत्र मिला था। बलवन्त प्रौफेसर था। अपनी जेब की दशा से विवश था, सविता के विवाह में सम्मिलित न हो सका।

एक दिन साइकल पंक्चर हो जाने पर बलवन्त उसे घसीटते हुए घर जा रहा था कि रास्ते में एक बड़ी-सी शानदार मोटर रुक गई।

बलवन्त को तीन मिनट लग गए पहिचानते कि मोटर से उतरने वाली नारी, सुन्दर साड़ी में लिपटी, आभूषणों से लदी, नव-विवाहिता और कोई नहीं उसकी छात्रा सविता ही है।

"तुम! सविता!"

"जी हां, प्रोफेसर साहब।" साथ में एक अधेड़ व्यक्ति थे चालीस के उस पार होंगे।

"यह तुम्हारे पति हैं?"

"जी हां," वह छोटा सा उत्तर था, स्वभावानुसार।

"अच्छी तो हो?"

"जी हां।"

बस, पति के बुलाने पर वह चली गई। न मिलने की बात न कुछ और। बलवन्त के मन में तूफान सा उठ गया था, यह

लड़की क्या है ? दो वर्ष के लगभग कैद काटी इसने, बीमारी सही देश के लिए, खादी पहिनती थी, कालेज के चर्खा संग की अध्यक्षा थी। आज साड़ी······सोने की भीनी तारों से चमकती हुई, जगमगाते आभूषण, शानदार 'ब्यूक' मोटर। यह सब क्या है ? क्योंकर है ? क्या इसकी परिस्थितियां ऐसी थीं? माता-पिता ने जबरदस्ती कर दी है ? जिस बात में इसकी इच्छा न हो, तो यह किसी का रोब मानने वाली नहीं। कैद थी, माता-पिता की बात न सुनी। अब तो बड़ी है, स्वतंत्र है। उसके पैसे के लिए ? और इतने में बलवन्त घर पहुंच गया तो चाय पीने में और बच्चों में मस्त हो गया।

बलवन्त चहलकदमी कर रहा था कि इतने में पत्नी आ गई।

"चलो सोने।"

"नहीं, तुम जाओ, मैं अभी न आ'सकूंगा।"

मन ही मन उसने पक्का कर लिया कि आज सविता का विश्लेषण करके ही सोएगा।

"मनचली" है वह, सब लोग कहते हैं।

उस मुलाकात के उपरान्त कितनी धटनाएं घटीं, पंजाब में विभाजन हुआ, यूनिवर्सिटी लाहौर से सोलन गई, देहली में कालेज खुला, बलवन्त को भी पंजाबी प्रोफेसर होने के नाते यहाँ जगह मिली। जीवन के इस भयानक तूफान में वह सविता को भूल सा गया था। एक दिन वह लड़कों के कहने पर यमुना तट पर 'पिकनिक' में सम्मिलित होने गया। उनके हंसी-मजाक से ऊबकर वह घूमने लगा। कुछ दूर जाने पर उसन एक नारी देखी···

वह उसी की ओर आने लगी···बलवन्त खड़ा हो गया, न जाने कौन आ रही है ?

उस नारी ने आगे बढ़कर कहा—

"नमस्ते प्रोफेसर साहब ।"

स्वर चिर-परिचित था । बलवन्त को कानों पर विश्वास न हुआ । ध्यान से देखने पर पहिचान गया । उसकी छात्रा थी सविता, शरीर आगे से कृश था, ओंठ लिपस्टिक से रंगे थे, बाल कटे थे ।

"तुम···नहीं···आप सविता !"

वह खिलखिला दी । इस बार छोटा-सा—"जी हाँ" नहीं था ।

"प्रोफेसर साहब, आखिर आपने पहिचान ही लिया ?"

"हां, पर इतनी दुबली कैसे हो गई हो ?"

"मोहन हलवा खाकर, मोटरों पर घूम कर ।"

बलवन्त हैरान था, यह कैसा उत्तर है ।

ऐसे उत्तर देती है, शायद तभी लोग इसे 'मनचली' कहते हैं ।

"कहिये, आपके पति कैसे हैं ?"

"यह आप क्यों कह रहे हैं, मुझे, मैं तो वही आपकी छात्रा हूं, सविता । हां, मेरे पति को भगवान् के घर से बुलावा आ गया था, हृदय गति वन्द हो जाने पर वह चले गए ।"

बड़े सहज ढंग से उसने यह बात कही थी । बलवन्त देखता रह गया ।

"आजकल फिर क्या करती हैं ?"

"क्या करती हूं ? यह प्रश्न तो बड़ा टेढ़ा है। नदी देख रहे हैं न, कैसे वह रही है। बस, ऐसी ही धीमी गति से, मैं भी बह रही हूं।"

बलवन्त और कुछ न पूछ सका...सदैव ही ऐसा होता रहा है। जब-जब बोलती रही है, बलवन्त उसकी वचालता के आगे चुप ही रहता है।

"प्रोफेसर साहब, आप तो यहीं हैं, फिर कभी मिलूंगी।"

बलवन्त कुछ कहे कि हाथ जोड़कर वह चल चुकी थी और तभी उसके एक सहयोगी ने कन्धे पर हाथ रख कर कहा "यार तुम भी इस मनचली को जानते हो ? मेरा परिचय करवा दिया होता।"

"देखो, तुम उस भद्र नारी को मनचली कहते हो।तुम्हारे जैसे सभ्य व्यक्ति यदि ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं तो..."

गरम क्यों हो रहे हो, बलवन्त, यह सभ्यता शायद तुम्हारी होगी, तुम भी तो यार फिलासफर हो न, तुम्हारी निगाहों में मनुष्य को व्यक्तिगत स्वतंत्रता पूर्ण रूप से मिलनी चाहिए। शायद तुम तो समाज के प्रतिबन्ध नहीं मानते, और शायद यह भी नहीं मानते, किसी नारी का यदि पति मर जाए, वह युवती हो अमीर हो, तो घर की चारदीवारी में बन्द रहे। मेरे दोस्त, यह तुम्हारी भद्र महिला स्वछन्द पंछी है, डाल, डाल पर...'

बलवन्त इससे अधिक न सुन सका था। अब भी उसके माथे पर पसीने की बूंद चमकने लगीं। क्या यह सब सच

है ? यदि है भी तो क्या हो गया। सविता भी तो नारी है, एक अधेड़ व्यक्ति से ब्याह हुआ उसका, क्या हो गया यदि उसके मृत्यु पश्चात् वह···ऐसे हो गई···वह सविता···खादी की केसरी धोती में लिपटी, तिरंगे को बचाती, आप पकड़ी गई थी, सविता जिन्दाबाद···सविता की जय···महात्मा गाँधी की जय, नेताओं को छोड़ दो। बलवन्त के कानों में स्वर गूंजने लगे। वही देवी सविता ने कैद काट कर विवाह किया,···समाज की श्रीमती सविता बनी···अब कलंकिनी सविता है।

आज संध्या को ही सविता के पिता आए थे, अपनी छोटी लड़की के लिए एक लड़के के चरित्र के विषय में पूछ रहे थे।

बलवन्त उन्हें न पहचान सका था, परन्तु वह कहने लगे–'आप तो सविता को भी पढ़ाते थे न'...और तब उनका चेहरा क्रोध से तमतमा गया, शायद घृणा से मुंह की नसें फूल गईं। सविता का नाम सुन कर ही बलवन्त के कान खड़े हो गए।

"क्या जेल जाने वाली सविता आपकी लड़की थी।"

"हाँ वह—जेल जाने वाली सविता...पति के नाम को धब्बा लगाने वाली...मदिरा पान करने वाली...डाल-डाल पर मंडराने वाली...यूं ही पैसा बरबाद करने वाली...भगाई हुई लड़कियों को अपने घर में रखने वाली...अपनी बहनों के रास्तों का कांटा–मेरी लड़की है। भगवान् ने न जाने मुझे किस पाप का फल दिया है।"

बलवन्त निःस्पन्द था, निरुत्तर था। क्या कहे ? जीवन को

बिताने काअपनाअपना ढंग है। न जाने उसके मन में कौन सी भावनाएं काम कर रही होंगी।

बलवन्त केवल इतना ही कह पाया—"भगाई हुई ल. कियों को अपने यहां आश्रय देना तो कोई बुरी बात नहीं है महोदय, इस से तो वह भला कर रही है।"

"बस बस प्रोफेसर साहब...वह कलंकिनी है...पति के पैसे पर सांप है। बहनों की कोई सहायता नहीं करती।"

बलवन्त ने तब कोई उत्तर नहीं दिया था और न ही कुछ पूछा था। सविता के पिता चले गए थे। वह सोचता रह गया था। मनोविज्ञान के बहुत से नियम उस पर लागू करता रहा, परन्तु कोई नियम उस पर अनुकूल न बैठता था। बलवन्त को लगा जैसे सब ग्रन्थियां एक साथ साकार हो उठी हैं। सविता का व्यवहार मनचली के अनुकूल ही है।

घड़ी ने बारह बजा दिए। बलवन्त कोई समाधान नहीं ढूंढ पाया। वह उठा और दर्पण में अपना मुख देखने लगा। वह देखने में बुरा नहीं। क्यों न वह कलंकिनी सविता से परिचय बढ़ा ले, एक बार जाकर देख ले, वह क्या है? क्यों ऐसी हो गई है? पिता नाराज हैं, शायद वह रुपया उन्हें नहीं देती। वह तो उसका रुपया चाहते हैं। इतने बड़े घर ब्याही गई है। शायद केवल इसलिए कि वह समय-कुसमय पर इनकी सहायता करती रहे। बलवन्त ने अन्त में निश्चय कर लिया कि वह पता लगायेगा—वह सविता को और भी निकट से देखेगा। और इसी निश्चय को लेकर वह सोने चला गया।

पत्थर और संगीत

पत्थर और संगीत

निशा को बचपन से पढ़ने की लगन है। माता-पिता का केवल नाम ही सुना है उसने, देखा कभी नहीं। दूर के अमीर ताऊ ने उसका पालनपोषण किया है। पढ़ने की प्रवृत्ति देख कर उसे पढ़ाया है। मैट्रिक तक पढ़ाने की इच्छा थी, पर निशा को मैट्रिक में पढ़ने का रोग लगा कि जीवन भर लगा रहा। रायसाहब का अपना लड़का विलायत गया, फिर लौटा नहीं। लड़की ब्याही थी। उन्होंने नाती को गोद लिया था, उसके लिए उन्होंने आया रखी थी। परन्तु अपने घर का आदमी पास होने से और ही बात हो जाती है। निशा का भोला मुख उनकी दया का पात्र बना। अनाथ बालिका के भाग्य जागे।

रायसाहब उसके पढ़ने से प्रसन्न होते। अपने किसी बच्चे ने उन्हें इतना गौरव न दिया था जितना यह बालिका दे रही थी। उसने बी० ए० प्रथम श्रेणी में पास किया। डाक्टर राकेश ने जिन्होंने मनोविज्ञान में पी० एच० डी० की थी और अब और रिसर्च करने जा रहे थे, निशा को अपना सहकारी

चुन लिया । राकेश ने निशा को चार वर्ष तक पढ़ाया भी था ।

निशा प्रातः नौ बजे से लेकर ग्यारह बजे तक डाक्टर राकेश के पास काम करने जाती, सन्ध्या को सात बजे तक नोट्स बना कर घर दे जाती, सवेरे उन पर विवेचन होता। रायसाहब ने जब यह सुना तो उन्हें जंचा नहीं। उनके रूढ़िवादी मन को ज़रा सी ठेस लगी।

वह बोले, "दो सौ रुपये के लिए यह काम करती हो, तो छोड़ दो, परन्तु मैं तुम्हारी भावनाएं कुचलना नहीं चाहता। तुम सोचती हो कि यह तुम्हारे लाभ के लिए हैं तो करती जाओ, अवश्य करो।"

"ताऊ जी आपकी बात तो ठीक है। डाक्टर साहब हमारे एम० ए० के विषय के सब कुछ हैं । यदि मैं इनका तीन-चार महीने का काम कर दूंगी तो चाहे पैसे लेकर कर रही हूं, यह मेरे आभारी रहेंगे और मुझे अच्छा डिवीज़न प्राप्त कराने में सहायता करेंगे।"

राय साहब मुस्करा दिए। काम पर जाते समय अपनी मोटर भेज देते, कभी-कभी आती बार राकेश का टांगा निशा को घर छोड़ जाता ।

डाक्टर राकेश की आयु यही पैंतीस के लगभग होगी । देखने में अत्यन्त साधारण हैं, चाहे दिमाग असाधारण है। सारा शहर जानता है कि डा० राकेश को स्त्रियों से घृणा है । जहाँ तक होता स्त्रियों के सम्पर्क में न आते । एकाएक निशा की मनोविज्ञान में तेज़ बुद्धि और अद्वितीय सफलता

देखकर उसे अपनी खोज में सहायता के लिए लगा लिया था। अभी तक राकेश ने जितनी पुस्तकें लिखी हैं उनमें यही प्रचार किया है कि यदि स्त्रियों से दूर रहना चाहो तो दूर रह सकते हो, यह कठिन .ाम नहीं है। पुरुष की वह अनुभूति जिससे वह स्त्री की ओर आकर्षित होता है, पुरुष स्वयं उकसाता है। और नारी के जाल में स्वय फंस जाता है। यदि उसमें न फंसना हो तो दुनिया की कोई भी शक्ति उसे फंसने न देगी। मन में ऐसा अप्रिय विचार आ भी जाए तो उसे दूर किया जा सकता है। यह उपाय भी राकेश ने पुस्ताक में लिखे थे—किसी ध्येय के पीछे लग जाना, संगीत की शिक्षा लेना या किसी अन्य आदर्श का पालन करना। नारी-नर का मिलन कोई आवश्यक बात तो नहीं है। जानवरों में तो नर और मादा मिलते हैं, फिर मनुष्य "रेशनल एनिमल" बुद्धिजीवी कैसे हुआ ?

निशा को डा० राकेश के व्यक्तित्व से एक प्रकार का भय था। परन्तु वह उसका आदर भी बहुत करती थी। पहले ही दिन वह काम पर आई तो डाक्टर साहब ने बीस वर्षीय निशा के सांवले मुख और शरीर का निरीक्षण किया, निशा कुछ लजा गई। श्रेणी में कभी-कभी लड़के उसे घूरा करते थे, परन्तु यह तो बड़ा निकट का निरीक्षण था। वह घबरा गई।

प्रोफेसर राकेश मुस्कराए। बोले—

"निशा। तुम एक अच्छी लड़की हो, क्योंकि तुम व्यर्थ में जबान चला चलाकर अपने अस्तित्व को दूसरों पर लादती नहीं। एक नारी में सबसे अधिक इसी बात की कमी होती

है जो उसे घृणित बना देती है। क्यों तुम्हारा क्या ख्याल है ?"

"ठीक है डाक्टर साहब, मैं स्वयं उन व्यक्तियों को पसन्द नहीं करती जो बहुत बोल कर दूसरों का नाक में दम कर देते हैं।"

"ओफ ! तुम्हें इतना कह देना चाहिए था, हां ठीक है। डाक्टर साहब अनावश्यक शब्द है, मुझे पता है मैं डाक्टर हूं फिर मेरा निशा कहना यूं ही बकवास है, क्योंकि तुम्हें अच्छी तरह पता है कि तुम निशा हो।"

उसी दिन से निशा बहुत कम बोलती है। उसका उत्तर हां या 'ना' में होता है। यदि डाक्टर अधिक पूछते तो झिझकते एक-आध बात का उत्तर देती। मन में भय समाया रहता। सवेरे जिस समय मिलने आती तो कभी भी नमस्ते नहीं करती, केवल मुस्करा देती, उसमें कोई शब्द खर्च नहीं होते। डाक्टर भी प्रत्युत्तर में मुस्करा देते और काम आरम्भ हो जाता।

डेढ़ मास तक काम बड़े जोर से होता रहा। निशा ने बड़ी मेहनत की। राय साहब ने बार-बार कहा—बेटी इतनी मेहनत तो तुमने कभी बी० ए० में भी नहीं की थी और अब क्यों करती हो।

निशा इतना ही कह पाती—"ताऊजी, यह बी० ए० नहीं, एम० ए० नहीं, रिसर्च है रिसर्च।"

ताऊ जी चुप हो जाते।

नन्हा भी कहता–"दीदी, मेरी ओर देखो न मुझे तो मैट्रिक की परीक्षा देनी है फिर भी इतनी मेहनत नहीं करता।"

निशा बी० ए० की परीक्षा के बाद फौरन ही काम में लग गई थी। इतनी बड़ी मेहनत के बाद उसे हल्का बुखार आने लगा था। उसने भय से डाक्टर राकेश को बताया ही नहीं। प्रोफेसर साहब नाराज हो जायेंगे तो बना बनाया खेल बिगड़ जाएगा। वह फर्स्ट डिवीजन न पा सकेगी तो कालेज की प्रिंसिपिल न बन सकेगी। वह काम पर जाती रही। रात भर जाग कर नोट्स बनाती रही। डाक्टर राकेश देखते रहे उसके मुख की ओर, परन्तु इतनी न तो फुर्सत थी, न ही उन्होंने निशा से पूछा, क्या हुआ था उसे।

तीन दिन तो जैसे तैसे होता रहा, निशा निभाती रही। चौथे दिन शरीर ने जबाव दे दिया। उठने का प्रयत्न करती तो उठा नहीं जाता था, मन ही मन नाना प्रकार के विचार उठने लगे—डाक्टर साहब सुनेंगे तो अवश्य नाराज होंगे। उसने स्वयं पत्र लिखना चाहा, परन्तु खाट से उठा नहीं गया। राय साहब ने पत्र लिख कर ड्राइवर के हाथ पत्र भिजवा दिया।

ठीक समय पर निशा के स्थान पर ड्राइवर को पा राकेश को कुछ क्रोध आया। यह स्त्रियां! पत्र पढ़ा तो गुस्सा आश्चर्य में बदल गया। उसे पता था कि निशा कार में आती है। ड्राइवर पहले भी नोट्स की फाइलें लाया करता था। इसी लिए उसकी उसे पहिचान थी। राकेश भी बिना कुछ कहे ड्राइवर के साथ

बैठ गया और उसी मोटर में वह रायसाहब के घर निशा को देखने के लिए आ गया।

निशा उत्सुकता से ड्राइवर के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। ज्वर से उसका मुंह लाल हो रहा था, सिर घूम रहा था। नन्हे की आया सिर दबा रही थी। रायसाहब बाहर गए थे और नन्हा स्कूल।

डाक्टर को आया देखकर निशा भौचक्की रह गई। राकेश स्वभाव के अनुसार मुस्कराया।

"तुम बीमार हो गई हो,तकलीफ हो रही होगी, मैं बहुत दिनों से देख रहा था कि तुम्हारा चेहरा कुछ उतर रहा था, परन्तु तुम ने तो जिक्र नहीं किया कि तुम बीमार हो गई थीं।"

निशा चुप रही।

"निशा ! तुम्हारी ताकत कम हो जायगी बीमारी से। जो शक्ति किसी रिसर्च के काम में लगनी थी वह तो इसी में व्यय हो जायगी। यह तो हानि उठाई है तुमने और मैंने।"

निशा मुस्करा दी।

राकेश ने निशा के सिर पर हाथ रखा। निशा की देह में रक्त का तीव्र संचार होने लगा। पहले ही बुखार के कारण बड़ी गर्मी थी।

"अच्छा निशा ! गुडबाई, चलता हूं।"

उसी संध्या के सवा सात बजे डाक्टर राकेश फिर राय-साहब की कोठी पर निशा के कमरे में बैठा था।

"निशा इस समय तुम से मिलता था, मेरा जीवन क्रम इस भांति बन गया था, आज तुम्हें अपने यहां न पाकर सोचा,

तुम्हारे यहां ही चला आऊं।''

''अच्छा किया आपने''—क्षीण स्वर में निशा बोली।

''अच्छा किया है, तुम ने तो मुझे सोच में डाल दिया है—अच्छा किया है या नहीं।''

निशा मुस्करा दी।

''आप सोच में क्यों पड़ गए ? मैं बीमार हूं, आप मेरा समाचार लेने आए, इस में सोचने की क्या बात है ?''

''हां...।''

पन्द्रह मिनट तक सन्नाटा रहा, निशा को बुखार से घबराहट हो रही थी और यह भय भी था कि कहीं डाक्टर उसकी बीमारी से बौखला न जाएं।

राय साहब निशा के कमरे में आए।

''ताऊ जी ! यह हैं डाक्टर राकेश मेरे प्रोफेसर।''

डाक्टर ने हाथ मिलाया रायसाहब से। ''मैं सौभाग्यशाली हूं कि आप जैसे महापुरुष ने मेरे घर आने की कृपा की है।'' राय साहब ने कहा।

''मैं महापुरुष ! आप गलत फरमा रहे हैं। संसार में पुरुष सब एक प्रकार के होते हैं। न कोई महान् न कोई नीचा। केवल अन्तर इतना ही होता है कि कोई अपनी पशु प्रवृत्तियों पर काबू पा लेता है और कोई यूं ही चलने देता है। फिर महान शब्द किसी नारी या पुरुष के साथ जोड़ना तो इसका गलत प्रयोग करना है।''

रायसाहब मुस्कराए--यह मनुष्य अवश्य ही एक फिलासफर होने के काबिल है।

उस रात डाक्टर राकेश ने वहीं खाना खाया और रात को जाते समय निशा से कहा,"मेरा मन जाने को नहीं कर रहा निशा ! मुझे भी बीमारी हो गई है।"

निशा ने केवल थकी आंखों और सूखे होठों से मुस्करा दिया।

दूसरे दिन निशा सो कर उठी तो कमरे में बड़े-बड़े गुलाब गुलदस्तों में लगे हुए थे। आया से पूछने पर पता लगा कि डाक्टर साहब का नौकर दे गया है क्योंकि बीमार मनुष्यों के लिए फूल चाहिएं।

निशा नौ बजे से ग्यारह बजे तक इसी आशा में रही कि अब डाक्टर राकेश आएंगे। निशा का मन निराशा से भर गया, वह क्यों आएंगे ? यदि पहले दिन आ गए तो इसका यह अर्थ नहीं कि वह रोज आएं।

फिर डाक्टर राकेश जैसे व्यक्ति को अपना समझना भी बहुत बड़ी भूल है।

संध्या को डाक्टर साहब का नौकर हाल पूछ कर चला गया।

दूसरे दिन दस बजे उसकी सखी शशी आयी। निशा से लिपट गई।

निशा को विश्वास नहीं हुआ। शशी खीझ कर बोली ,,पता नहीं तुझे विश्वास क्यों नही होता। यदि डाक्टर के यहां

मास्टर जी न गए होते तो यह समय मेरा था...मैं तेरे पास कैसे आती ?"

शशी के चले जाने पर निशा इस समस्या को हल न कर सकी। उसका बुखार उतरने लगा। मलेरिया था। संध्या को भी डाक्टर ने हाल पुछवा भेजा। बुखार तो चला गया पर डाक्टर ने परिश्रम करने की मना ही कर दी।

फिर बुखार हो जाने का भय था।

तीन चार दिन के उपरान्त निशा डाक्टर राकेश के यहां गई। डाक्टर वायलिन सुन रहे थे। मुख पर उद्विग्नता के चिह्न थे।

"निशा तुम आ गई, अच्छा हुआ। बन्द कीजिए मास्टर साहब, यह वायलिन बन्द कीजिए।"

उस दिन राकेश केवल निशा से बातें करते रहे। सन्ध्या को जाना उसने बन्द कर दिया। राकेश ने कह दिया "तुम घर पर नोट्स तैयार करके नौकर के द्वारा भेज दिया करो, मैं ठीक-ठाक करके भेज दिया करूंगा।"

वह घर से ही नोट्स भेजती। सप्ताह में डाक्टर साहब एक बार उसके घर आकर सप्ताह भर के कार्य पर अपना मत दे जाते और विवेचन कर जाते। निशा लगन के साथ काम करती जा रही थी। उसे जरा सी भी त्रुटि रख कर डाक्टर साहब की आँखों में हीन नहींबनना था। चार मास का काम साढ़े तीन मास में समाप्त हो गया। निशा ने सुख की सांस ली। परन्तु उसे दुःख भी हुआ कि अब वह डाक्टर

साहब के निकट न जा सकेगी।

परन्तु डाक्टर साहब 'प्रूफ' लेकर आते रहे। एक दिन निशा संध्या को बाहर टहल रही थी कि डाक्टर राकेश आ गए।

"निशा, यह रही तुम्हारी रिसर्च की पुस्तक......।"

निशा ने पहला पृष्ठ देखा आसमान से गिरी, लेखिका... निशा रानी, प्रस्तावना डाक्टर राकेश।

"ओह, यह क्या डाक्टर साहब ?"

यह ठीक ही तो है"—मैं चोर नहीं हो सकता। मैंने एक सप्ताह भर से अधिक काम नहीं किया, फिर मेरी मानसिक स्थिति काम करने योग्य नहीं रह गई थी। सारा काम तुमने किया मैं तो संगीत सुनता रहता था। मैं पत्थर हूं पर अन्याय कैसे करता, यह तो धोखा होता।"

निशा, केवल बी० ए० पास निशा ने यह इतना रिसर्च कर लिया।

"निशा और सुनो मैंने इसकी टाइप कापी यूनिवर्सिटी में दे दी है, तुम्हें पी० एच० डी० मिल जाएगी।"

निशा आवेश में भूल गई कि वह डाक्टर से बातें कर रही है। पुस्तक उसके हाथ से छूट गई। राकेश को झकझोर कर उसने पूछा—सच !!"

" हां सच।"

निशा की चरम आकांक्षा पूर्ण हो गई। टप टप टप आंसू बहने लगे।

राकेश ने अपने रुमाल से आँसुओं को पोंछते हुए कहा—"निशा, जीवन के संगीत की कहानी तो यह आंसू ही कहते हैं।"

—❀—

रंजना और रमन

रंजना और रमन
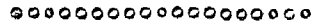
[इस कहानी में नई शैली का प्रयोग है। कई बार मनुष्य मुख से कुछ नहीं बोलते, परन्तु किसी दैवी शक्ति से प्रेरित होकर वह एक ही दिशा में सोचते हैं। इस कहानी के दोनों पात्रों को आपस में बातचीत करने का सुअवसर नहीं मिलता फिर भी उनके हृदय एक दूसरे से सहानुभूति रखते हैं—प्रकाशक

रंजना

वह मेरा पीछा तो नहीं कर रहा? गाड़ी आध घंटा लेट है, यह आध घंटा! जिन्दगी और मौत के बीच लटकी रहूंगी। 'वेटिंग रूम' में ही बैठ जाऊं? बिल्कुल सन्नाटा है। कोई भी नहीं, कोई आ भी जाएगा तो क्या? मैं अखबार सामने खोल लेती हूं। कितना थक गई हूं मैं···मेरा अंग-अंग दुःख रहा है, किस बेदर्दी से मारता था मुझे। मैंने अच्छा किया जो वहां से आ गई। मेरा दिल घबरा रहा है, मुझे

अपने साहस पर स्वयं अचम्भा होता है। मैं दुःखों के भार से दब गई हूं। अब और नहीं सहा जाता था। आज की रात भयानक रात है। मेरी सहनशक्ति ने जवाब दे दिया। और दिन की तरह आज भी वह पी कर आए थे। छीः, यह रुपया भी किसी किसी आदमी को बिल्कुल चौपट कर देता है। रुपये के बल पर ही तो वह रोज पी कर आते थे। पहले की भांति आज भी गालियां बकने लगे, आज पहली बार मैंने बाहर कदम रखने की हिम्मत की है। स्टेशन का रास्ता भी तो मेरा देखा नहीं था। यह छोटासा कस्बा, शाम होते ही यहाँ रोशनी बन्द हो जाती है। अन्धेरा हो जाने के बाद कोई स्त्री तो क्या शायद पुरुष भी घर से नहीं निकलता। नहीं, मैं भूल रही हूं। हवेली के बाहर पैर रखते ही मैंने एक आदमी को देखा है। उसे न जाने क्या सूझी जो इतनी आंधी में घर से निकला। ऊंह, मुझे क्या लेना-देना उससे। वह कुछ देर मेरे पीछे आ रहा था। किसी को क्या? जहाँ चाहूं जा सकती हूं। अरे !! यह तो, वही आदमी है, जिसे रास्ते में देखा था। यह क्यों आया, इसे क्याकाम था यहाँ? बाहर से तेज हवा आ रही है, ऐसे सन्नाटे में स्टेशन पर कोई कुत्ता भी नहीं भौंकता। क्या कहने, ठीक सामने वाले कोने में बैठ गया है। बैठ जाए, मेरी बला से। इसके बाल अस्त-व्यस्त हैं। फिर भी भला दीखता है। कौन जाने, गुण्डा भी हो सकता है। चलो बैठूं, देख लूंगी क्या करता है। समझ लूंगी।

रमन

तो यहां बैठी हैं यह। मैं भी हैरान था कहां गई ? अन्धकार ता नहीं निगल गया ? मैं जब पीछे पीछे आ रहा था, तो समझी कोई चोर है। दूर दूर हटकर छिपछिप कर चलने लगा। इसी लिए तो देर से पहुंचा हूं। आज इतनी निकट बैठी है रंजना, कुछ कदमों के फासले पर। इतनी अच्छी तरह से देख सकता हूं, इसी रंजना को, जिसकी आवाज पांच वर्ष से बड़ी हवेली में सुनी है। आवाज क्या, वह सदैव दुःख-भरी, बेबसी की सिसकियां होती थीं। इन पांच वर्षों में दूसरे तीसरे गजानन्द चौधरी नशे में घर आता, किसी न किसी बात पर झगड़ा कर रंजना को पीटने लगता। बेचारी रंजना कैसी उदास और गमगीन बैठी है। उसकी सुन्दर बड़ी-बड़ी आंखें डरी हुई हिरणी की तरह लग रही हैं। उन आँखों में व्यथा का सागर लहरा रहा है। चौधरी गजानन्द देखे तो उसके मन पर सांप लोट जाए, उसकी झूठी मर्यादा पर बट्टा लगा कर पत्नी घर से भाग आई है। यहां अकेली, बेपर्दा, स्टेशन के 'वेटिंग रूम' में बैठी है।

रंजना

यह तो वही व्यक्ति है, जिसे मैंने घर से निकलते समय देखा था। क्या इसे भी आज ही जाना था। मुझे क्या ? ओह घर छोड़ना किसी भी नारी के लिए आसान नहीं। मैं भी क्यों घरबार छोड़ती, घर छोड़ने की सम्भावना भी मेरे मन में कभी न आई थी। ओह, ऐसा भयानक पति किसी को न दे भगवान।

देखने में इतना सौम्य। मां, उसका गोरा रंग, चौड़ा भाल, देखकर ही प्रसन्न हुई थीं। कौन जानता था वह भेड़िये जैसा निर्दय होगा। लड़की के मुख पर तो लिखा नहीं रहता वह कैसे भाग्यवाली होगी। उस बुढ़िया की बात आज याद हो आई है। स्कूल में उसने बहुत सी लड़कियों का हाथ देखकर हर एक के भाग्य के विषय में बतलाया था। मनोरमा को एक निर्धन पति, मुझे देखते ही वह बोली थी, तुम्हारा पति राजा होगा, हवेली का मालिक होगा, घोड़े हाथी उसके द्वार पर बंधे रहेंगे। तुम रानी कहलाओगी, पर वह बुढ़िया बीच में ही चुप हो गई थी। मनोरमा और कमला जिद करने लगीं उन्हें बतलाया जाए कि क्या होगा, बुढ़िया के मन में चुप्पी का क्या कारण है। वह सुन कर रहेगी। परन्तु बुढ़िया उठकर चली गई थी। उसने कोई उत्तर नहीं दिया था। शायद वह कहना न चाहती थी। बुढ़िया भविष्य देख सकती होगी। लोग कहते थे, वह देख सकती है, परन्तु हमने झूठ समझा था। काश, वह बुढिया बता देती—रंजना, तुम भाग्यवती हो परन्तु उस भाग्य में दुर्भाग्य की छाया सदैव मंडराती रहेगी। रंजना, तुम पति द्वारा रोज पिटोगी। तुम्हें नित्य जूतियों की मार सहनी पड़ेगी। मैं ब्याह से इनकार कर देती, यदि मुझे जरा सा भी सन्देह होता। भविष्य के गर्भ में छिपा कौन देख सकता है ?

रमन

रंजना का मुख कैसा तन गया है, भयानक हो उठा है।

वह अपने दुर्भाग्य पर रो रही है। शायद गजानन्द की मार की पीड़ा अभी भी बनी है। रंजना, काश, मैं तुम्हारे जखमों पर मरहम लगा सकता। तुम से बात कर सकता। तुम मुझे केवल एक अपरिचित समझती हो रंजना, तुम्हारे लिये मेरा कोई अस्तित्व नहीं। मैं तुम से परिचित हूं। मेरा तुम्हारा परिचय बड़ा घनिष्ट है। मैं तुम्हारी चीखों को पहिचानता हूं। चौधरी शराब पीकर आता, तुम्हें मारता, तुम चिल्लाती, वह चीखें मेरे कानों में भी पहुंचतीं। तुम क्या जानो रंजना, उस आवाज में मेरे लिए क्या जादू होता। मैं मुग्ध तुम्हारी ओर खिचता चला जाता, वह चीखें मुझे पागल बना देतीं। मैं विवश हो छत पर चक्कर लगाता। एक कोने से दूसरे कोने तक। रात भर तारों को निहारता रहता। प्राय: हर दूसरी तीसरी रात को यह काण्ड होता। आज की रात सब रातों से भयानक थी, गजानन्द चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा था...

'आज तुम्हें मार डालूंगा, तुम्हारा गला घोंट दूंगा।' और फिर तुम्हारी चीखें।

उसके बाद...चीखों की आवाज बढ़ती गई। मैं सहन नहीं कर सका। घर से बाहर चला गया। यह मेरे वश की बात न थी। मैं दो तीन घण्टे बाहर घूमता रहा। लौटा तो तुम्हें हवेली से बाहर निकलते देखा। तुम्हारे पड़ोस में रहते पांच वर्ष हो गए हैं। परन्तु कभी एक दिन भी तुम्हें घर से निकलते नहीं देखा रंजना। मैं ठिठक गया। गरम चादर में लिपटी तुम

ही थीं। मेरा अनुमान सच्चा निकला।

रंजना

मुझे घूर कर क्या देख रहा है। पहिचान नहीं सकता। कभी घर से बाहर कदम नहीं रखा। इतनी स्वतन्त्रता ही नहीं मिली कभी मुझे। जब सगाई हुई थी तो क्या सोचा था...इतने बड़े आदमी की पत्नी बनने जा रही हूं। संसार भर घूम कर देखूंगी। मोटर गाड़ी पर चढ़ कर घूमने निकलूंगी। प्रति वर्ष पहाड़ पर जाऊंगी। सब सपने मिट्टी में मिल गए। माँ के घर जाने तक का अधिकार छीन लिया गया। बचपन के वह दिन भी कितने अच्छे थे, जब हम हर साल नैनीताल, नहीं तो मसूरी जाते थे। माँ साथ होतीं, अकेली कभी न रही थीं। मैं, आज इस तूफान भरी रात में, मैं अकेली हूं। मेरे दाएं हाथ का घाव चू रहा है। दर्द की टीसें जैसे मुझ पर विजय पाना चाहती हैं। मैं आज विजयी हूं किसी और वस्तु को अपने पर विजय न पाने दूंगी। चाहे वह दर्द क्यों न हो। गजानन्द...धनी गजानन्द...गांव के मुखिया, और अपने पति पर आज मैं विजय पा आई हूं। उस ने मेरे हाथ पर दूध का गिलास पटका था। मेज पर रखे हाथ से टकरा कर वह गिलास चूर चूर हो गया। अपना खून निकलते देख, मेरी आत्मा विद्रोह कर उठी।

कुचली हुई, सिमटी हुई भावनायें एकाएक भड़क उठीं। अपने प्रति किए गये सारे अत्याचारों का बदला चुकाने के लिए मन एकाएक मचल उठा। मेज पर लाल हरी पत्तियों

वाला फूलदान मैंने भी उठाया। शीशे का फूलदान, जिस के किनारे खुरदरे थे, उसके सिर पर दे मारा।

हां...उसी पति के सिर पर जिसके चरण छूने के लिए समाज मुझे कहता है। किसी को क्या ? कोई समझ सकता, उस नारी की क्या भावनाएं होंगी, रोज-रोज जो पति से पिटती हो, शिक्षित हो। खुले वातावरण में जिसका पालन हुआ हो। जिसे क्षण भर के लिए पति का प्यार न मिला हो। छीः, उस पति के नाम से मुझे घृणा है। उसे पति कहना पति जाति का अपमान करना है। मेरी मां उसके चेहरे को देखें तो पहचाने भी न। उस पर भयानक झुरियां दिखलाई देती हैं। शराब पीने से मुख की कान्ति जाती रही है। उस घड़ी को मेरा धन्यवाद है, भगवान ने मुझे शक्ति दी, मैं साहस बटोर कर अपनी जान बचा सकी। उस सोने के पिंजरे से निकल सकी।

रमन

रंजना, तुम उस दुष्ट से अपनी जान बचा सकी, मैं तुम्हारा अनुगृहीत हूं। कितनी बार मुझे लगा वह तुम्हें मार डालेगा। कभी जीवित नहीं रहने देगा। जिस रात तुम पिटतीं, दूसरे दिन ही महरी आकर बतलाती, कल रात रंजना बीबी बहुत पिटी, आज वह बिस्तर से उठी नहीं, खाट पर ही पड़ी हैं। रंजना बीबी की पीठ सूज रही थी, घुटना दर्द कर रहा था। महरी और भी नमक-मिर्च लगाकर बात सुनाती। मुझे बहुत दुःख होता, परन्तु अपना दुःख अपने तक सीमित रख, मैं

भीतर ही भीतर घुलने लगता। सोचता—बिचारी ने कितने कष्ट सहे हैं। कोई नहीं जो रंजना के कष्टों को गिन सके? पहचान सके? आज दुःखों के भार से दबी हुई एक कोने में सिमिट कर बैठी है। मुझे वह दिन भी याद है जिस दिन गजानन्द की हवेली के बाहर एक मोटर आकर ठहर गई थी, शहनाइयों के बजने के साथ ही, झिलमिलाती, सोने के तारों वाली साड़ी पहने रंजना, कोमल सी, फूलों से लदी लता सी, लाज के बन्धनों से झुकती जा रही थी। उस समय रंजना के मुख की मुस्कराहट मुझे आज भी याद है। वह मस्कराहट! जैसे दिवाली के दीप जगमगा रहे थे और बसन्त की बहारें नृत्य कर रही थीं। मुझे आज भी याद है, मैंने गजानन्द की ओर देखा था, वह निर्लज्ज उस समय भी शराब के नशे में चूर था। उसी समय मेरे मन में किसी ने कहा, इस जानवर को ऐसी सुन्दर पत्नी मिली। यह इस योग्य न था। कली से सुकुमार, बादलों के बाद की खिली धूप सी। उसी समय मेरा मन रंजना के लिए सहानुमति से भर उठा था। प्रथम बार देखने पर ही मझे अनुभूति हो गई थी यह सुखी न रह सकेगी। एक सुन्दर चिड़िया गिद्ध के पँजे में आ गई थी।

रंजना

किसी दूसरे व्यक्ति से बात करने का अवसर ही मुझे नहीं मिला। हृदय का बोझ सदा हृदय में ही दबा रहा और मैं घुटती रही। न कोई सुनने वाला था, न किसी ने सुनने की इच्छा प्रकट की। मैं वहां जा रही हूं जहां पर कोई मेरा पता न पा सकेगा। मैं अपने मन की कर सकूंगी।

यह आभूषण और रुपयों की यह थैली मेरे काम आयेगी, अरे ! याद आया, थैली मेरे हाथ से छूट गई थी। जिस समय मैं हवेली का बाहर वाला किवाड़ बन्द कर रही थी, यह आदमी वहाँ से गुजर रहा था।

रमन

यह थैली को क्या घुमा फिरा कर देख रही है। शायद इस में कुछ रुपये-पैसे हों। जो इसके काम आयेंगे। यह तो अपनी, ड्योढ़ी में उसे छोड़े जा रही थी। यदि मैं उठा कर इसे न दे देता, तो यह कहीं हवेली पर पड़ी रह जाती।

रंजना

ऐसा लगता है कि इस व्यक्ति ने मेरे विषय में पूरी बात जान ली है। शायद इसे पता है, मैं ने अपने पति के माथे पर एक फूलदान मार कर उसको घायल कर दिया है। मैं रुपया और आभूषण ले कर भाग रही हूं। वह पुलिस को बुला सकता है। मैं भी समझ रही हूं। मेरा निरीक्षण क्यों कर रहा है। इसे यहां खड़े होने की क्या आवश्यकता है। शायद पुलिस को बुला कर आया है। पुलिस मेरा क्या कर लेगी। हथकड़ियां पहनाकर ले जाएगी। माँ को सुनकर धक्का पहुंचेगा। वह शायद इस धक्के को सहन न कर सके। वह रोती रहेंग। नहीं नहीं की मृत्यु नहीं हो सकती। वह मुझे जेल में मिलने आयेगी। कहेंगी मेरी बेटी तुम ने इतना साहस कैसे बटोरा ? तुम में इतनी कठोरता कैसे आई ? मैं माँ के सामने रो न सकूंगी। उन्हें रोता देख, मुझे ग्लानि होगी, परन्तु रोना नहीं आएगा। मां के गले

से लिपट जाऊंगी। मेरे पिता, हो सकता है वकील मुकर्रर न करें। मेरी मां उन्हें वकील बुलवाने पर जरूर मजबूर करेंगी। पिता जी नहीं मानेंगे। तो भी माँ का दिल है। और फिर मैं अपनी माँ की इकलौती बेटी हूं।

रमन

जाने रंजना कहाँ जा रही है। गजानन्द चौधरी की नाक कट गई। कल नहीं तो परसों तक सब अखबारों में छप जाएगा चौधरी की पत्नी भाग गई। चौधरी अपना सिर पीट लेगा, उस अवस्था में देखने योग्य होगा। रंजना; तुम्हारी चीखों को सुनते-सुनते पाँच वर्ष बीत गए। अब तुम जा रही हो तो मैं एक दो बात भी न कर सका। यह कैसा अनर्थ है, रंजना।

रंजना

अदालत में पेशी होगी, तो मैं कह दूंगी वह मुझे मारता था; बहुत पीटता था। जज को विश्वास नहीं आएगा। कस्बे भर की परोपकारी संस्थाओं को चन्दा देने वाला गजानन्द चौधरी पत्नी को कैसे पीट सकता है ? जज को आश्वासन दिलाने के लिए मैं महरी को अदालत में पेश करूंगी। महरी सच सच कह देगी। उसने मेरे शरीर पर मार के बने घावों को कितनी बार सेंका है। मुझे भूख-हड़ताल करते हुए कितनी बार देखा है। उसके सामने घर के स्वामी ने जूती फेंक कर कितनी बार मुझ से बातचीत की है। प्रत्येक बार यही कहा है, तुम्हारे माता पिता ने धोखा किया है। कुलच्छनी को ब्याह दिया है। रुपया पैसा भी पूरा

नहीं दिया। महरी के अदालत में पेश होने पर महाराज को भी पेश करूंगी, वह बेचारा कितनी बार रोया...'मालिक' बीबी, रानी तो गऊमाता है। इन्हें आप इतना दु:खी करते हैं मालिक इसीलिए इस घर पर भगवान् की कृपा नहीं होती, कोई बाल-गोपाल आप के आंगन में क्यों खेलने लगा। क्योंकि यहां स्थान-स्थान पर मालिकिन के आँसू बिखरे हैं।' क्या जज को इस बात का विश्वास भी न आयेगा ?

रमन

इस फूल से चेहरे पर भी उस निर्दय को दया नहीं आती थी। घर के बाहर तो पहरा रखता था। उसके अपने भी सम्बन्धी भीतर न जा सकते थे। एक बार मैंने भी तो समझाने का प्रयत्न किया था। परन्तु उसने उसी समय मुझे फटकार दिया था कि मैं उनके घर के मामलों में कोई दखलअन्दाजी न करूं। मुझे वह दिन याद है। यह भी याद है कि रंजना की चीखों से तंग आकर मां ने इनके घर जाने का प्रयत्न किया किया था···कितनी डाँट सहनी पड़ी थी बेचारी को उस नराधम से। अब उसका बदला चुक गया, ऐसी करारी चोट है उसके मुख पर।

रंजना

जज को बूढ़े महाराज की बात पर अवश्य ही विश्वास आ जाएगा। नहीं तो मैं किस को पेश करूंगी। मेरी ओर से कोई गवाही न होगी ? न हो, मुझे कोई आवश्यकता नहीं किसी की गवाही की। मैं कहूंगी महिला डाक्टर को बुलवा

कर मेरे शरीर का निरीक्षण करवाइये। मुझे कितनी चोटें पहुंची हैं। मैंने अपनी जान बचाने के लिए फूलदान उठा कर मारा था। आत्मरक्षा के लिए मारना कोई जुर्म नहीं। जज और पुलिस के आदमी हवेली का वह स्थान देखने आएंगे जहाँ यह घटना हुई। मैं कह दूंगी वह खाने की मेज थी, मैं रात के नौ बजे तक उनकी राह देखती रही। यह जब नहीं आए, तो मैं खाना खाने बैठी—पहला ही ग्रास मुंह में डाला था कि मेरे पति आ गए। मुझे खाना खाते देख वह उबल पड़े। तुम मुझ से पहले क्यों खा रही हो? तुम्हें लज्जा नहीं आती। और कई गालियां देने लगे।

रमन

आज मैं जान पाया हूं कि मैं कितना कमजोर दिल हूं। मुझमें साहस क्यों नहीं? आगे बढ़कर रंजना से बात कर लूं? वह मुझे चोर उचक्का समझकर शोर न कर दे, शोर सुन कर पुलिस आ जाए तो? गजानन्द चौधरी की नींद खुल जाए, वह स्टेशन की ओर भागा-भागा आ जाए तो? पुलिस मुझे सन्देह में पकड़ ले कि मैं रंजना को भगा कर ले जा रहा हूं। नहीं नहीं, मैं रंजना की आबरू को बट्टा नहीं लगाना चाहता, केवल उसकी सहायता करना चाहता हूं। काश इस समय कोई दूसरा मेरे मन की बात जानता हो, वह जा कर रंजना को समझा दे कि रमन केवल तुम्हारी ओर एक अपाहिज की तरह देख ही नहीं रहा, रंजना, वह तुम्हारी मदद करना चाहता है। रंजना, रमन की भुजाओं में बल है।

गाड़ी लेट है तो क्या, वह तुम्हें इन हाथों पर फूल का तरह उठा कर जहां कहोगी पहुंचा देगा, पच्चीस मील एक घटे की स्पीड से।

रंजना

खाना भी पाप है। पति से पहले खा लेना''' इससे बड़ा पाप तो कोई कर ही नहीं सकता। ऐसा चौधरी गजानन्द समझते हैं। कैसे बौखला गए थे। क्रोध में बोले थे। 'ओ निर्लज्ज तू खाती जा रही है, यह नहीं मुझे भी पूछ ले कि मैं ने कुछ खाया है।' मेरी हंसी निकल गई। रात के एक बजे घर लौटने वाला यदि गलती से जल्दी लौट आये तो दूसरे खाना बन्द कर दें। 'तू मेरी बदनामी करती है। तू यदि बद-नामी न करे तो किसमें इतनी हिम्मत है कि मेरे सामने जबान खोलकर बोल सके, आज मैं आखिरी बार फैसला करके ही रहूंगा। मैं तुम्हारा गला घोंट दूंगा। तुम''' केवल तुम हो जो मुझे लोगों से लज्जित करवाती हो। तुम मेरी खिल्ली उड़ाती हो, दूसरे भी तुम्हें देख कर रग पकड़ते हैं, नहीं तो पास पड़ोस में किसी की मजाल है जो मुझ से कोई कुछ कहे।' अज्ञात भय से मैं कुर्सी से उठ गई, मेरा दिल कांप गया था। चौधरी गजानन्द की जबान बन्द ही नहीं हो रही थी। वह बोलता गया।

रमन

गाड़ी आने में थोड़ा सा समय रह गया है। मेरे जीवन के यह अमूल्य क्षण अभी समाप्त हो जाएंगे। जैसे हवा बादलों को उड़ाकर ले जाती है उसी तरह मेरी खुशियां

कुछ ही मिनटों में छिन जायेंगी। रंजना आवेश से भर उठी है। अखबार को जिस हाथ ने पकड़ा है वह हाथ काँप रहा है। रंजना, कुछ तो बोलो, तुम अखबार में आंखें गढ़ाए बैठी हो। शायद तुमने बोलना तो सीखा ही नहीं। केवल सुनना सीखा है। सहना सीखा है।

रंजना

पांच वर्षों के लम्बे वैवाहिक जीवन में पहली बार आत्मसुरक्षा की भावना मन में जाग उठी। बार-बार पिटने पर भी मैं चुप थी, परन्तु अब चुप रहना मुश्किल हो चुका था। ख़ून से भरी आँखें लिए वह मेरी ओर गला घोंटने के लिए आगे बढ़े। उनके हाथ में शीशे का गिलास था, जिसे उन्होंने पहले मेरे हाथ पर फेंका। दाँया हाथ मेज पर टिका था, गिलास पड़ते ही चकनाचूर हो गया, मेरे हाथ से खून की धारा बह निकली।

रमन

रंजना, मैं चुपचाप तुम्हारी ओर देख रहा हूं, मैं ऐसा नहीं हूं। कुछ कहना चाहता हूं, किन्तु तुम्हारे भय से ही मेरी जुबान नहीं खुलती। तुम्हारे हाथ का रुमाल खून से भर गया है। गजानन्द ने जाने किस जन्म का बदला तुम से लिया है। मेरी तो रूह कांपती है।

रंजना

अपना खून देख कर मैंने फूलदान दे मारा, बदले की भावना ने मुझे पागल बना दिया। कोई दूसरा रास्ता न

था, मैं उस घर से कभी न निकल सकती थी। यह सब भी पलक मारते ही हो गया। अब तो मैं थक चुकी हूं। परन्तु मेरी उमंग अभी ताजी है मैं स्वतन्त्र अनुभव करती हूं। सिर पर जो बोझ था वह दूर हो गया। अब मुझे किसी का भय नहीं। यह झूठ है, मुझे भय है—पुलिस का। चौधरी की नींद तो अभी नहीं खुलेगी, नींद ? बेहोशी, सिर से खून बहने पर बेहोशी, और दिन होता, मैं पास बैठी रहती; घाव धोती, मरहम लगाती, मेरे शरीर पर अनेक घाव हैं उनकी कृपा से, मुझे उस घाव की कोई चिन्ता नहीं। सहन-शक्ति की भी एक सीमा होती है। न जाने क्या समय है। गाड़ी आने में कितनी देर है।

रमन

आगे बढ़ो रमन, एक बार बात कर लो। रंजना की गाड़ी अभी आ जाएगी। एक बार ऊपर देखो। एक बार मुस्करा दो, रंजना। वह मुस्कान मेरे हृदय पर अंकित हो जाने दो। यह भी बता कर जाओ, तुम कहाँ जा रहो हो। पता बता दो, रंजना। वह भी मौन रहेगी, जब तक तू आगे न बढ़ेगा रमन। आगे बढ़ कर बात कर।

रंजना

मेरी याद में कोई भी दिन ऐसा नहीं जिस दिन उन्होंने मेरे दुःख सुख की बात पूछी हो। अभी थोड़ी देर में यहाँ से जाऊंगी। एक भी मधुर स्मृति नहीं। जब जब यहां की बात सोचूंगी हृदय कचोटेगा। इतनी बड़ी हवेली में एक भी तो

ऐसा आदमी नहीं जिस की याद सुखद होगी। बेचारा बूढ़ा महाराज ही सहानुभूति दर्शाता था। महरी तो आँख मटका कर बात करती थी। जैसे मेरी दुर्दशा में भी उसे एक रस आता हो। जैसे उसके लिए वह भी जगह जगह बातचीत करने का एक दिलचस्प विषय हो। नहीं, महरी ने दो चार बार नहीं, कई बार एक रमन बाबू की बात भी तो की है। वह हवेली के पड़ोस में रहते हैं, उनकी मां है, घर में और कोई नहीं। रमन बाबू ही केवल ऐसे व्यक्ति हैं जो मेरे बारे में महरी से बार बार पूछा करते थे। याद आया, महरी ने यह भी तो कहा था कि रमन बाबू को मेरी चीखों से बहुत दुःख था। निर्दय मुझे मारता इस बेदर्दी से था, चीखें मेरे बस की बात नहीं रहती थीं।

रंजना और रमन

रमन—गाड़ी आ गई।

रंजना—हां, गाड़ी आ गई।

रमन—आप...आप जा रही हैं ?

रजंना—जा रही हूं, आप को क्या एतराज है ?

रमन—मुझे एतराज,...नहीं नहीं, मैं तो आप से कुछ कहना चाहता था।

रंजना—गाड़ी आ गई है; मैं जा रही हूं मुझे पता है आप क्या कहना चाहते हैं।

रमन—सच !! आप जानती हैं मैं क्या कहना चाहता हूं ?

आप कहाँ जा रही हैं ? आप का पता क्या होगा ?

रंजना—आप को पता मैं क्यों बताऊंगी ?

रमन—अब आप गाड़ी में सवार तो हो गईं, देखिये, आप, आप...कुछ और समझ रही हैं, विश्वास कीजिये, मैं आपका हितैषी हूं।

रंजना—आप कौन हैं ?

रमन—मेरा नाम रमन है, आप के पड़ोस में रहता हूं।

रंजना—रमन, रमन, तो आप रमन हैं !

रमन—तो आप मुझे जानती हैं ?

रंजना—हां...नहीं नहीं।

रमन—पता न बतलाएगीं ? आप कहां जा रही हैं ?
रंजना...रंजना...रंजना...। ओह, गाड़ी चली गई।

१७६

जुगाबन्ती मौसी

गुणवन्ती मौसी

आंख से अन्धे, नयनसुख वाली उक्ति प्रायः हमारे दैनिक जीवन में चरितार्थ होती दिखाई देती है। हमारी गुणवन्ती मौसी ऐसी नहीं हैं, वह वास्तव में गुणों का भंडार हैं। गुणों से आप यह मतलब मत लगा लीजिए कि वह बहुत बड़ी लेखिका हैं, या किसी कला-केन्द्र की अध्यक्षा हैं। वह चित्रकार या कवियित्री भी नहीं हैं और यदि आज्ञा दें तो यह भी बतला दूं कि वह संसद की सदस्या भी नहीं। फिर आप कहेंगे, जब वह यह 'सब' नहीं तो उसकी चर्चा से लाभ ? आजकल तो उस मौसी, बुआ, या बुआ को ननद की मौसी, और उससे भी निकट का सम्बन्ध स्थापित करना हो तो, आप, यानी जिसमें 'हम' सम्मिलित हैं, अक्सर ऐसी मौसी की सास की भतीजी की नानी से कोई न कोई सम्बन्ध निकाल लेते हैं और उन्हीं की चर्चा में हमें अतीव आनन्द मिलता है।

हम सोचते हैं, भरी सभा में, हल्के से, झूठे या सच्चे रिश्ते का उल्लेख कर देंगे तो वह बात सूखी लकड़ियों की आग की तरह फैल जाएगी। क्षमा कीजिएगा लकड़ियाँ तो आज के युग में फिर भी मंहगी हैं, परन्तु ऐसी बातें तो केवल धीरे से, दूसरे व्यक्ति को विश्वास पात्र बना कर कान में फुसफुसा दी जाती हैं, और बिना दामों के स्वतः ही फैलने लगती हैं।

हमारी मौसी, केवल हमारे मौसा श्री मुरलीधर जी की धर्मपत्नी हैं। श्री मुरलीधर ने शायद जीवन भर में, राम झूठ न बुलवाये, सच्ची मुरली के दर्शन नहीं किये होंगे। हां, वैसे तो वह नियमपूर्वक अपना माथा "मुरली वाले" के सामने झुकाते हैं। श्री मुरलीधर की एक बड़ी सी दुकान, पंजाब के एक बहुत ही छोटे से शहर में है। शहर का नाम बतला दिया ''तो जानते हैं क्या होगा ? ठीक वही होगा, जिसकी मुझे आशंका है और जिसका वृत्तान्त मैं आपको अभी बत- लाने जा रही हूं। पति की आभूषणों वाली दूकान में जो सोने का 'सेट' नया बनता है, चाहे वह जड़ाऊ हो या सादा, एक दिन मौसी के शरीर की शोभा जरूर बढ़ाता है। वैसे कहना तो नहीं चाहिए, परन्तु पूरी बात का आधा महत्त्व जाता रहेगा, यदि मैं मौसी के व्यक्तित्व पर प्रकाश न डालूं। मनोविज्ञान का बड़े से बड़ा पंडित भी इस बात से इन्कार नहीं करेगा कि शरीर व्यक्तित्व का बहुत ही आवश्यक अंश है। गुणवन्ती मौसी, जहां चार फुट दस इंच लम्बी हैं वहाँ उनका वज़न साढ़े तीन मन से कम तो न होगा। त्वचा का रंग है।

है जैसे किसी ने मक्खन में केसर मिलाया हो। गोल मुख पर बड़ी-बड़ी आँखें, उन पर सुनहरी फ्रेम की ऐनक जो 'दृष्टि-दोष' के लिए नहीं लगाई गई थी।

मौसी जब मुस्कराती तो उनका ऊपर वाला होंठ, जिस पर एक बड़ा सा तिल है, ऊपर नीचे उठता है, फड़कता रहता है, देखने वालों का हल्का सा मनोरंजन करता है। गुणवन्ती मौसी बहुत बात करती हैं, एक बार शुरू हो जाती हैं तो उन बातों का अन्त नहीं होता। बातें करने के साथ साथ मुख पर हर भाव के साथ एक नयी प्रतिक्रिया होती है। जब हंसती हैं तो उनका दोहरा शरीर आठ तह पा जाता है।

गुणवन्ती मौसी हमारी मां की सगी, चचेरी, ममेरी या किसी तरह की 'गांव-बहन' भी नहीं हैं। वह लाहौर में हमारे एक तीन महीने पुराने पड़ोसी, यानी बरसों साथ वाले मकान में रहने वाले पड़ोसी की नहीं, केवल नए पड़ोसियों की, वहीं छोटे से शहर में, पड़ोसिन रह चुकी थीं। एक बार लाहौर में प्रदर्शनी हुई थी, उसमें वह आई थीं, पड़ोसियों ने गुणवन्ती मौसी से परिचय करवा दिया था। एक ही बार हमारा नमस्कार हुआ था।

कुछ मास पूर्व, दिल्ली में अन्तर्राष्ट्रीय उद्योग प्रदर्शनी हुई थी। तब जिस घर ने कभी भी मेहमानों का मुख नहीं देखा था, वहाँ भी मेहमान आये थे। हमारे यहाँ की बात ही दूसरी है। ंजाब सरकार की ओर से एक सरकारी डाकबँगला है, जिस में केवल अधिकारी वर्ग के लोग आकर ठहरते हैं, परन्तु

हमारे 'डाकबंगले' में न किराया लगता है, न धोबी की धुलाई, सुबह का नाश्ता और रात का भोजन भी किसी न किसी तरह मिल ही जाता है। रही दोपहर के भोजन की बात, वह आजकल घर में खाने का रिवाज नहीं। खैर मैं बात अपने यहाँ के डाकबंगले की कर रही थी। दिल्ली में इतनी बड़ी नुमायश हो, वह न देखी जाय, भला यह कैसे हो सकता था। धड़ाधड़ मेहमान पके आमों की तरह टपकने लगे। दिल्ली में पाँच छः कमरों का घर हो और हर कमरे के साथ स्नानगृह सदा हो तो आप को औपचारिक विधि से किसी को निमन्त्रण देने की आवश्यकता नहीं, वह काम बेतकल्लुफ मेहमान स्वयं ही कर लेते हैं।

मेहमानों से घर भरा पड़ा था। उस शाम को अधिक सर्दी नहीं थी। रात्रि के पौने नौ बजे के लगभग समय होगा। मैं चाय पी रही थी। उसी समय श्रीमती गुणवन्ती मौसी ने प्रवेश किया। हाथों में सोने की बीस-बीस चूड़ियाँ, गले में पांच छः हार, क्षमा कीजिएगा, उतनी जल्दी में, मैं पूरी तरह से हारों की गिनती नहीं कर पाई, कम गिनाने से, हमारे मौसा की प्रतिष्ठा में बट्टा लगेगा। मौसी ने आते ही मुझे गले लगा लिया। सच मानिये, उन्होंने मुझे क्षण भर का समय नहीं दिया कि मैं उठ कर उनका स्वागत करूं।

"अरे ! तुमने पहिचाना नहीं, अच्छी भांजी हो ?"

मेरी सगी मौसी कोई नहीं। फिर यह कौन हैं ? किसी भाभी की माँ भी नहीं है। पंजाब में भाभी की माँ को मौसी कहने का रिवाज है।

इतने में उनका बड़ा लड़का बिस्तर उठाये आगे बढ़ा। वह मुस्कराकर बालों-"बेटा, बहन को नमस्कार करो, तुम्हारे जीजा शायद बाहर गए हैं, झट से सब सामान अपने आप ऊपर ले जाओ।"

तब कहीं मुझे आभास हुआ और दिमाग में यह बात कौंधी कि यह तो यहाँ रहने आई हैं।

मौसी की जुबान बोलती रही...एक क्षण भी रुकी नहीं।

जो कुछ उन्होंने कहा था, उसका दो शब्दों में आशय यही था कि अमृतसर के गुरुद्वारों में, वह अपने सातवें पुत्र, तथा बड़ी लड़की के लड़के तथा अपनी तीसरी लड़की के लड़के का मुंडन करवा उन्हें माथा टिकाने के लिए वहाँ ले गई थीं, तो उनकी मुलाकात, मेरी बुवा की ननद की ननद से हुई और वहीं से उन्होंने मेरा पता पाया। हाँ, 'पोस्कार्ड' तो परायों को लिखा जाता है, मैं भला कोई परायी थी? फिर कौन वह महीना दो महीने रहने आई थीं, यही दो चार दिन की बात थी, क्या हुआ कि कुल मिला कर वह चौदह बड़े प्राणी तथा पांच छः बच्चे थे।

मौसी ने मुझे तो हाथ से पकड़ कर अपने पास बैठा लिया। कमरे के भीतर उनका लड़का, लड़की, या उन लड़के लड़कियों के पति पत्नी, या फिर कोई बच्चा बारी-बारी से आने लगा। मौसी-जिन के लिए काला अक्षर भैंस बराबर था, बड़ी तत्परता से, मेरा 'इन्ट्रोडक्शन' पुत्र पुत्रियों, ताती पोतों से करवा रही थीं। किसी की मैं बुआ थी और किसी की मैं मौसी, बड़ी बहन और छोटी बहन।

उस समय मुझे लग रहा था शायद मैं कोई सिनेमा की फिल्म देख रही हूं। वर्ना लोगों की इतनी भीड़, जिन्हें मैंने जन्म भर देखा तक नहीं, कैसे एक के बाद एक बढ़ती ही जा रही थी। मुझ से किसी तरह आज्ञा लेने, या कुछ पूछने की आवश्यकता गुणवन्ती मौसी ने नहीं समझी। वह स्वयं ही सब को बतलाने लगीं कि वह क्या क्या करें, उनके कथनानुसार बड़े लड़के ने ड्राइंग रूम का 'कारपेट' गोल कर दिया, सोफे की कुर्सियां दूर-दूर हटा दीं और वहाँ अपना तथा अपने बहन भाइयों के बिस्तर बिछा दिए।

जब बिस्तर तक नौबत पहुंच चुकी थी तो मुझे ख्याल हुआ इन्हें कुछ खाने के लिए भी तो पूछना चाहिए।

मौसी ने मेरे पति के बारे में अपने आप ही ज्ञान अर्जित कर लिया। मैं हैरान थी यह स्त्री यदि इतनी कुशाग्र बुद्धि रखती है तो इसे कहीं न कहीं मिनिस्टर होना चाहिए था।

खाने के लिए पूछने पर वह बोलीं—"मेरा तो व्रत है, मैंने सुबह से अब तक पानी नहीं पिया।"

एक छोटा सा बच्चा बोला—"नानी तुम ने दूध तो पिया था।"

मौसी को बच्चे की उस बात से कुछ बुरा नहीं लगा। वह झेंपी भी नहीं, मुस्करा कर बोलीं, "बेटी पाव भर बर्फी मंगवा लो मैं पानी पीऊंगी, कोरा पानी मेरे कलेजे में लगेगा।" आप यह न सोचें कि मौसी का व्रत था इस लिये इन्हें बर्फी

की आवश्यकता पड़ी। दूसरे दिन सुबह भी उन्होंने बर्फी खा कर ही पानी पिया। यही उनका नियम था।

मौसी ने बड़े बेटे से कहा, "बहन से शरमाता क्यों है? तुझे चाय पीने की आदत है, तो कहता क्यों नहीं, तेरी बहन पढ़ी-लिखी है, अभी देख कैसे चटपट तुम लोगों के लिए चाय और नाश्ता बनाती है।"

मैं थक कर चूर थी, उसी दिन संध्या को कुछ मेहमानों को बिदा कर चुकी थी। घर में नौकर केवल एक था, वह भी मेहमानों के लिए खाना बना बना कर तंग आ चुका था। मैं हतप्रभ सी मौसी के मुख की ओर देख रही थी। मौसी बड़ी चालाकी से मुझ से कहलवा चुकी थीं कि खाना अभी बना जाता है। इतने में, मेरे पति आ गए। मैं फिर से नहीं दोहराऊंगी कि उनका परिचय मौसी ने खुद ही, किन शब्दों में अपने परिवार से करवाया। परिवार कहना तो उन छोटे बड़े परिवारों का अपमान करना होगा, अंग्रेजी में एक शब्द है "इन्टूरेज," वही मौसी के साथियों की परिभाषा हो सकती थी।

मैं रसोई घर में जुटी थी, वहां मेरे पति आये और धीरे से दबे स्वर में बोले—"मैं ऐसे मेहमानों से बाज आया, तुम इन्हें किसी होटल में ठहरने के लिए कहो।"

अभी अधूरी बात ही उनके मुख में थी कि मौसी उनकी यानी मेरे पति की बलाएं लेती हुई कमरे के भीतर आ गयीं।

मैं चुपचाप काम में जुटी रही। मौसी ने व्रत सम्पूर्ण

किया, आध सेर बर्फी खाई, तीन पाव दूध पिया और रात्रि भोज—जो साढ़े ग्यारह बजे खाया—के लिए पूरी और हलवे की फरमायश कर दी।

मेरे छोटे भाई बहन, यानी मेरी मौसी के लड़के लड़कियाँ अपनी मां की आज्ञा मान, उस घर को अपना ही घर समझ, जहाँ तहाँ फर्श पर पानी फेंकने लगे। रात का खाना खाने तक वह लोग एक दर्जन शीशे के गिलासों को ठिकाने पर लगा चुके थे। मेरी मुश्किल की कुछ मत पूछिये, न तो मैं अपने पति से आंखें मिला सकती थी, क्योंकि वह बार-बार मौन रूप से डांट रहे थे कि यह मेरा ही दोष है जो हमारे घर को लोग धर्मशाला बनाये हुए हैं।

भोजन हो चुकने के बाद मौसी ने कहा कि उन्हें तो मलाई खाए बिना नींद ही नहीं आती। यह कहना अतिशयोक्ति न समझा जाए तो सच बतलाऊं कि उस रात को हलवाई से एक सेर मलाई और पांच सेर दूध आया, जो बच्चों को पिलाया गया।

मेरे पति ने घर छोड़ जाने की धमकी भी चुपके से दे दी। गुणवन्ती मौसी की बुद्धि की प्रशंसा किये बिना मैं न रह सकूंगी। उन्होंने झट से कहा—हम मौसी भान्जी पास-पास सोयेंगे, हम ने बहुत दिनों से एक दूसरे से सुख-दुःख की बात नहीं की है। इस बात को मैं दोहराऊंगी नहीं कि जीवन में उनसे मैं प्रथम बार मिल रही थी।

गुणवन्ती मौसी ने रात को बहुत सी बातें कीं जिनका

यहाँ उल्लेख कुछ बेतुका सा लगता है, परन्तु एक बात उन्होंने बड़े प्रगतिवादी ढङ्ग की कही—'बच्ची, तुम्हारे मौसा को मैं वहीं छोड़ आई हूं। इन बूढ़ों के साथ सैर सपाटा बड़ा मुश्किल हो जाता है।" फिर मौसी की आँखों में आँसू आ गए और उन्हें अपने महीन जालीदार दुपट्टे से, जिस पर रेशमी तागे की कढ़ाई हुई थी. पोंछती हुई बोलीं, "औरत के लिये यह कितना बड़ा दु:ख है कि उसका पति उसके देखते-देखते बूढ़ा हो जाए।"

मैंने आँखें अच्छी तरह से मलकर गुणवन्ती मौसी की ओर देखा, जो बूढ़े से जवान होने वाली दवाइयों, काले से गोरे होने वाले नुस्खों तथा चार दिन में नया जीवन पाने वाली गोलियों को चुनौती दे रही थीं। मैं मन ही मन सोचने लगी, कोई 'इटरनल यूथ' का कम्पटीशन हो, तो मौसी को जरूर प्रथम पुरस्कार मिल जाएगा। सात लड़के, पांच लड़कियां। ठीक एक दर्जन जीवित और लगभग आध दर्जन मरे बच्चों की मां! सिर का एक बाल सफेद नहीं!

मौसी कितनी देर बात करती रहीं मुझे याद नहीं। मैं थक कर चूर थी, सो गई। दूसरे दिन फिर वही झमेला शुरू हुआ। मौसी की अनुभवी आँखों ने मुझे और मेरे पति को पांच मिनट भी एकान्त में बात नहीं करने दी। कहीं हम दोनों मिलकर उन्हें घर से निकाल न दें। उतनी हिम्मत हम कभी चाह कर भी कर पाते?

नाश्ते पर कितनी पूरियां बनीं, या एक सेर जलेबियों की

फरमायश मौसी ने की, उनका ब्यौरा न देकर केवल इतना कहूंगी कि नुमायश में साथ ले जाने के लिए भोजन की मांग शुरू हुई।

मौसी का बड़ा लड़का बोला, "बहन जी के घर का खाना बहुत अच्छा है।"

मौसी का सर्वांग खिल उठा, "वाह। तुमने बहन के बनाये पराठे तो खाए नहीं। एक बार खाओ तो याद रह जायें।"

मेरे बनाए पराठे अच्छे होते हैं, यह मौसी ने कैसे जाना? इस विज्ञान का क्या नाम हो सकता है? यह न टेलीपैथी है और न ऐलोपैथी। मेरे ख्याल में इसे 'गेसोपेथी' कहना चाहिये।

मौसी का नहाना कैसे हुआ और कैसे वह नुमायश के तैयार हुईं, जैसे लड़का ब्याहने जा रहीं हों।

मेरे नौकर ने यह बात बहुत ही धीरे से कही कि नुमायश में बहुत अच्छा खाना मिल जाता है। मौसी ने कहा—"परदेस में कौन भरोसा, बेटी, तू कोई तीस पैंतीस पराठे सेक दे अधिक कष्ट मत कर।"

हमारे घी की शामत तो आनी ही थी, परन्तु पड़ोसियों का घी भी खत्म हो गया। सब बांध कर मौसी को सवारी की चिन्ता हुई। वह अपना सुनहरी चश्मा चढ़ाती हुई बोलीं—"मैं तो बसों में चढ़ी नहीं। तांगे के लिये वह जगह बहुत दूर है। केवल एक साधन रह गया है, मोटर।" हमारे यहाँ मोटर

न होने पर मौसी ने एक व्याख्यान दे डाला। मैं अपने पति के डर के मारे घर के भीतर चली गई क्योंकि मौसी बरामदे में लैक्चर दे रही थीं।

हमारे पड़ोसियों के पास मोटर है। उन्होंने दुर्भाग्य से बाहर निकाली, उसकी सफाई होते देख, मौसी बोलीं—

"अरे बेटी, पड़ोसियों की मोटर और अपनी में कोई भेद होता है फिर तुम तो बतला रही थीं कि हमारे पड़ोसी बहुत अच्छे हैं, बिल्कुल भाइयों की तरह। मेरे भी तो बेटे की तरह हुए। मौसी को नुमायश तक पहुंचा न देंगे?"

पड़ोसियों ने सुना वह बेचारे झेंपकर रह गए। इससे पहले कि वह कुछ बोलें, मौसी उनके लिए फैसला सुना चुकी थीं। मरते क्या न करते। उन्होंने मौसी को तथा उनके परिवार को दो बार में नुमायश पहुंचाया।

मौसी के बहुत आग्रह करने पर भी मैं उनके साथ नुमायश न जा सकी।

गुणवन्ती मौसी के गुणों का बखान कहाँ तक करूं दो दिन दिल्ली रह कर जब वह वापिस जाने लगीं, तो मेरे हाथ पर दो रुपये रख दिए—"बेटी क्षमा करना तुम्हें बड़ी तकलीफ दी है। फिर सच पूछो तो अपने आदमियों की तकलीफ तो नहीं होती। मुझे पूर्ण आशा है कि तुम भी हम लोगों से मिलकर प्रसन्न हुई होंगी।"

धीरे धीरे, नमस्कार आशीर्वाद समाप्त हुआ। दो रुपये मेरी हथेली पर थे और मैं समझ रही थी उस उक्ति का सही

अर्थ क्या है ऊंट के मुंह में जीरा। मौसी सीढ़ियां उतर कर फिर लौट आयीं, मेरा दिल धक् से रह गया। जाने शायद इन्होंने इरादा बदल लिया है। वह हांपती हुई आयीं और बोलीं—यह चवन्नी ले लो, बेटी, अपने नौकर को दे देना।

मैंने मन में सोचा, जमादार के लिये भी शायद इकन्नी है। परन्तु वह फिर मेरे सिर पर हाथ फेरती हुई, सैकड़ों आशीर्वाद देती हुई सीढ़ियां उतर गयीं। कहने की आवश्यकता तो नहीं कि हमारे पड़ोसी की मोटर बाहर खड़ी थी, जिसमें किसी तरह लद कर, आधे लोग एक बार और आधे दूसरी बार गये।

आप भी गुणवन्ता मौसी के गुणों की प्रशंसा किये बिना न रह सकेंगे, कि पड़ोसियों की मोटर पर हम लोग तो कभी कनाट-प्लेस तक न गए थे, कहां मौसी उसे अपने घर ही की मोटर समझ कर, पहले नुमायश घूमती रहीं, फिर स्टेशन पर भी ले गयीं। हमारे पड़ोसी आज तक मौसी को याद करते हैं। बड़ी हंसमुख थीं, बड़ी ही बेतकल्लुफ थीं। भेदभाव बरतना वह बिल्कुल नहीं जानती थीं। राजा की रानी होकर, वैसे तो सब राजा समाप्त हो गये हैं, क्या उनको टैक्सी की कमी थी? नहीं, हमारी मोटर ही उन्हें अच्छी लगती थी।

कभी-कभी मन में विचार आता है कि मौसी से बदला लूं, परन्तु चौदह-पन्द्रह लोग कहां से इकट्ठे करूं, अभी तक यह नहीं सूझ पाई।

Durga Sah Municipal Library NAINITAL
नैनीताल